

Swami Sivananda Saraswati
18/5/2000

Virgo
RA 14h44m45.77s D -05°33'54.90"

योगविद्या

वर्ष 15 अंक 9
सितम्बर 2026



बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत



हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारीयों प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

© Bihar School of Yoga 2026

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

Bihar Yoga
 APMB
 YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
 YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
 FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 (कवर पृष्ठों सहित)

कवर : श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती जन्मोत्सव

प्लेट : वायु तत्त्व साधना कक्षाएँ



आध्यात्मिक मार्गदर्शन

मन जीता तो जग जीता

मन के हाथ में ही आध्यात्मिक जीवन की कुंजी है। अतः मन पर आधिपत्य प्राप्त करो। फिर तुम केवल इस जग के नहीं, त्रिभुवन के अधिपति बन जाओगे। शान्त होकर मन पर विजय प्राप्त करने में ही वास्तविक महानता है। यदि तुमने मन पर विजय प्राप्त कर ली है, तो तुम समस्त संसार के विजेता हो। मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण है। शरीर और प्राण पर विजय प्राप्त करने से भी अधिक कठिन मन पर विजय प्राप्त करना है। मन के साथ संग्राम करना ही सबसे बड़ा संग्राम है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर-811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित

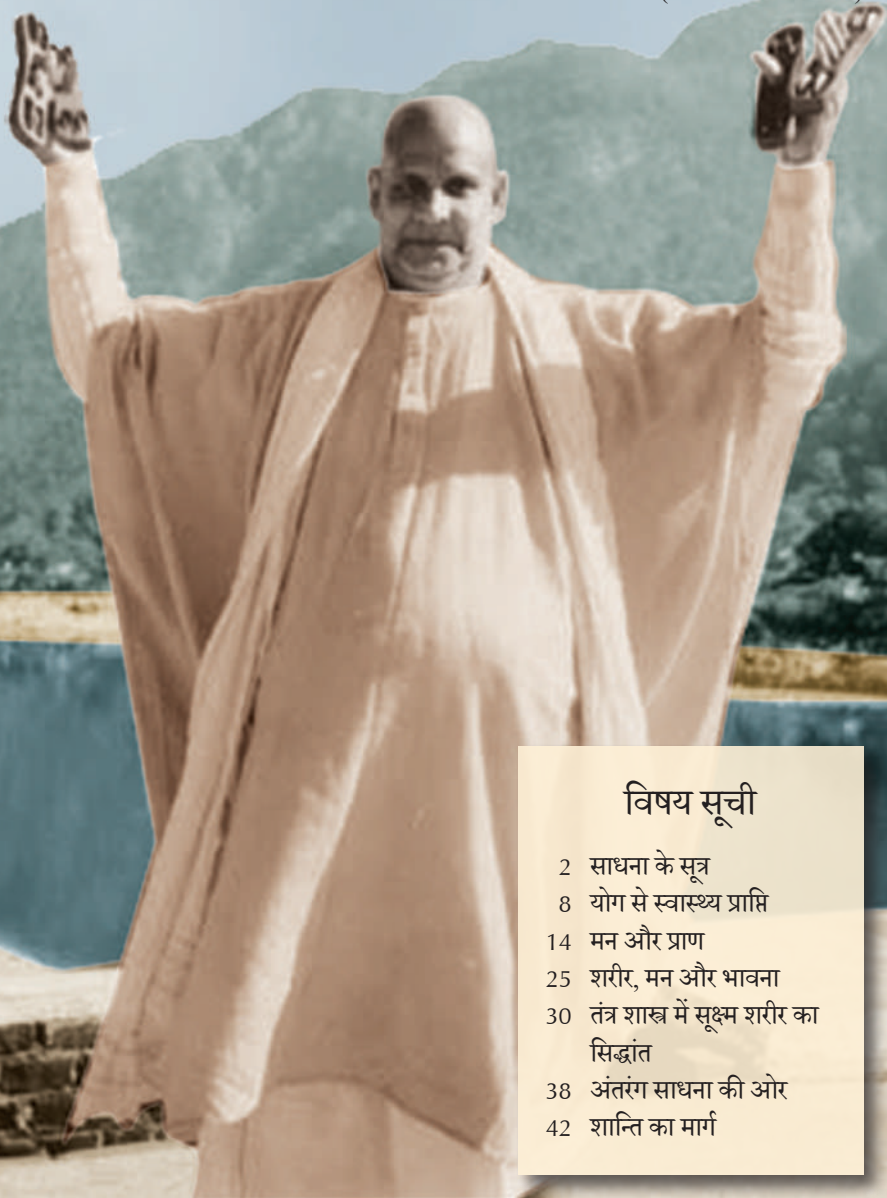
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 15 अंक 9 सितम्बर 2026

(प्रकाशन का 64वाँ वर्ष)



विषय सूची

- 2 साधना के सूत्र
- 8 योग से स्वास्थ्य प्राप्ति
- 14 मन और प्राण
- 25 शरीर, मन और भावना
- 30 तंत्र शास्त्र में सूक्ष्म शरीर का सिद्धांत
- 38 अंतरंग साधना की ओर
- 42 शान्ति का मार्ग

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

साधना के सूत्र

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

साधना ऐसी हो जो आपको सदा प्रसन्नचित्त, एकाग्र, संतुलित, शान्त, संतुष्ट, आनन्दित, अनासक्त, निर्भय, साहसी, करुणापूर्ण, विवेकशील, आत्मविश्लेषक, निर्मोही, क्रोधहीन, अहंकार रहित, इच्छारहित और 'मैं' की भावना से मुक्त बनाए। साधना आपको हर परिस्थिति में सुसम्पन्न आन्तरिक जीवन, अन्तरावलोकन की दृष्टि और मन की अविचलित अवस्था देने वाली हो। ये गुण आपके आध्यात्मिक विकास के द्योतक हैं। प्रकाश देखना, अनाहत की ध्वनि सुनना, दिव्य गंध का अनुभव होना, शरीर में विद्युत की सी लहर दौड़ना इत्यादि का अधिक आध्यात्मिक महत्त्व नहीं है, यद्यपि ये लक्षण इस बात के द्योतक हैं कि आपने एकाग्रता की प्रथम सीढ़ी को पार कर लिया है।

प्रारम्भ में साधना यान्त्रिक होती है, बाद की अवस्थाओं में यह व्यक्ति के जीवन का अभिन्न अंग बन जाती है। पहले-पहल यह बड़ी नीरस दिखायी देती है। बाद में यह प्रसन्नता, शान्ति, सामर्थ्य, साहस और मुक्ति प्रदान करती है। संसार में रहते हुए व्यक्ति दैनिक जीवन में अपनी व्यस्तता के कारण कभी-कभी साधना में नियमित नहीं रह पाता। ऐसी परिस्थितियों में उसे अपनी साधना के सभी अभ्यासों को करने की आवश्यकता नहीं। जहाँ भी सुविधानुसार हो सके, उसे दिन में किसी समय लिखित जप का अभ्यास कर लेना चाहिए।

प्रकृति आपके जन्म के पूर्व ही आपकी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था कर देती है। आखिर इस धरती पर आवश्यकता ही कितनी है। तीन-चार रोटियाँ और एक कटोरी दाल आपके शरीर को पूर्ण स्वस्थ रखने के



लिए पर्याप्त हैं। आप कहीं भी जाएँ, आपको इतना मिल जाएगा। यदि आप खुद को एक गुफा में बन्द कर लें तो वहाँ भी आपके दरवाजे पर आपको इतना मिल जाएगा। फिर आपने स्वयं को स्वार्थपूर्ण प्रयासों में क्यों उलझा रखा है और चिन्ता एवं परेशानियाँ क्यों मोल ले ली हैं? आध्यात्मिक अन्वेषण आरम्भ कीजिए। उत्साही बनिए। शाश्वत आनन्द के आकाश में ऊँची उड़ान भरिए।

नम्रता से बोलिए। मीठा बोलिए। अपनी प्रशंसा मत कीजिए। किसी के साथ दुर्व्यवहार मत कीजिए। अशिष्ट न बनिए। पीठ पीछे किसी की निन्दा न कीजिए। किसी की हँसी मत उड़ाइए। गरीबों का तिरस्कार न कीजिए। सावधान रहिए कि किसी दिन आप भी गरीब हो सकते हैं। बदला मत लीजिए। कृतज्ञ रहिए।

अपनी आध्यात्मिक प्रगति के मार्ग में आने वाली हर वस्तु का त्याग कीजिए। नियमित जप, ध्यान और प्रार्थना के द्वारा अपने हृदय को भगवद्-कृपा के अवतरण के लिए तैयार कीजिए। अगर भगवद्-कृपा के अवतरण में थोड़ा विलम्ब हो तो परेशान न होइए। धैर्य रखिए। शान्तिपूर्वक प्रतीक्षा कीजिए।

आप सोचते हैं कि यह स्थान अच्छा है, वह स्थान अच्छा नहीं है। आपको हर जगह अपने आध्यात्मिक वातावरण का निर्माण करना होगा। आपमें नरक में भी स्वर्ग का निर्माण करने की क्षमता होनी चाहिए। इसी में सच्चे साधक की आध्यात्मिक शक्ति निहित है।

यदि आप संसार में रहते हुए आध्यात्मिक जीवन जीते हैं और भगवान के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण करते हैं तो आपको निश्चित रूप से अपार मानसिक शान्ति मिलेगी, जिसका आज सर्वथा अभाव है। आप ईश्वर के हाथों में एक उपकरण मात्र हैं। आपका अस्तित्व मन, वचन और कर्म से अपने को पूर्णतया ईश्वरोन्मुख बनाने के लिए ही है। प्रत्येक श्वास, कर्म और विचार ईश्वर की सेवा में समर्पित हो, ताकि वे आपसे प्रसन्न होकर आपका उत्थान करें और आपको छाती से लगा लें। अपने जीवन का पूरी तरह आध्यात्मीकरण कीजिए, ताकि आपका जीवन ईश्वरीय कृपा और गौरव से ओतप्रोत हो जाए।

ईर्ष्या और द्वेष से मुक्ति ही आनन्द है। वासना, लोभ एवं घमण्ड का अभाव ही आनन्द है। अपने आपको शोक, विपत्ति और बन्धनों के जाल से मुक्त कीजिए। स्वयं को शरीर मानने की भ्रान्त धारणा से मुक्त होइये। अज्ञान और शरीर के प्रति आसक्ति से आप भटक जाते हैं। भ्रम से विपत्तियाँ पैदा होती हैं। वे मदिरा के समान नशे की अवस्था लाती हैं। अतः सत्य का बोध कीजिए और मुक्त हो जाइए।

निराशा को उतार फेंकिए। इस संसार में सुख या दुःख, सौभाग्य या दुर्भाग्य नित्य नहीं हैं। जिस प्रकार कठपुतली नचाने वाले के हाथों के इशारे पर नाचती है, उसी प्रकार मनुष्य भी विधाता के अधीन सुख-दुःख से गुजरता है। कोई अन्य व्यक्ति आपकी व्यथा या प्रसन्नता का कारण नहीं हो सकता, क्योंकि हर व्यक्ति अपने ही कर्मों का फल भोगता है।

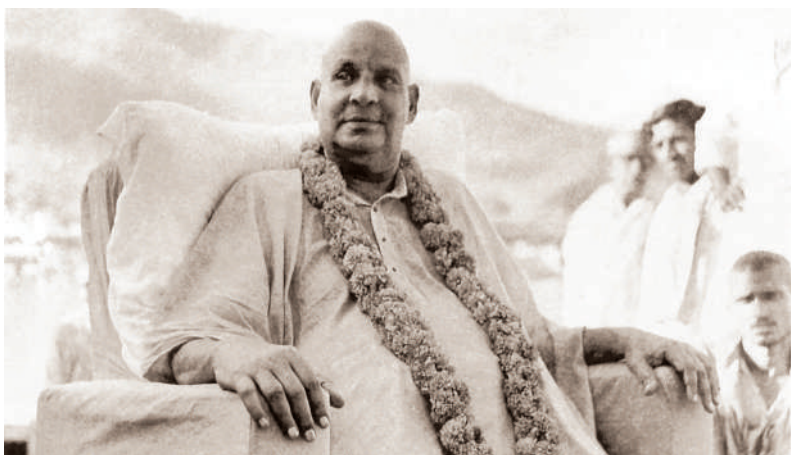
रोग और कठिनाइयाँ आपके कर्मों का शोधन हैं। धैर्यवान्, साहसी और प्रसन्न बनिजिए। शान्ति एवं धैर्य के साथ उनका सामना कीजिए। धूर्त व्यक्ति अपने पूर्व जन्म के किसी अच्छे कर्म के कारण आज सम्पन्न है। यह सांसारिक सम्पन्नता कोई सम्पन्नता नहीं है। यह मनुष्य को दुर्भाग्य की ओर ही ले जाती है। यदि भगवान् किसी को अपना बनाना चाहते हैं तो वे उसे कठिनाइयों और परेशानियों में डालते हैं, जिससे उसकी इच्छाशक्ति और सहनशक्ति बढ़े। इसलिए कष्ट और परेशानियाँ छिपे रूप में भगवान् का आशीर्वाद हैं। प्रसन्नता के साथ उनका स्वागत कीजिए। जप और कीर्तन में नियमित रहिए।

बुराई के बदले बुराई और अच्छाई के बदले अच्छाई करना आसान है, किन्तु बुराई के बदले अच्छाई देना कठिन और महान् कार्य है। बुराई का निम्नगामी मार्ग बड़ा आसान है, किन्तु अच्छाई की ओर जाने वाला ऊर्ध्वगामी मार्ग बहुत कठिन और काँटों से भरा है। जिनमें बुराई के बदले अच्छाई देने का सामर्थ्य और विवेक है, वे वास्तव में सौभाग्यशाली हैं। अच्छा करना आपका कर्तव्य है, अच्छा करना आपका स्वभाव बन जाना चाहिए और यदि कोई आपके प्रति बुरा करता है तो उसके प्रति अच्छा ही कीजिए।

अच्छे विचारों से अपने भविष्य का निर्माण कीजिए। विचार भाग्य का दूसरा नाम है। यदि आप बुरे विचारों को प्रश्रय देते हैं तो आपको मृत्यु, दुःख और शोक की बुरी फसल मिलेगी। आप पतन के मार्ग में अग्रसर होंगे। यदि आप दिव्य विचारों का संग्रह करें तो आप ऊर्ध्वगामी बनेंगे और आपको शाश्वत आनन्द की अच्छी फसल मिलेगी। अपने प्रारब्ध का चयन खुद कीजिए।

क्या धैर्यवान् और क्षमाशील व्यक्ति के लिए कुछ भी असह्य है? क्या कोई ऐसा काम है जिसे दृष्ट व्यक्ति करने में सकुचायेगा? जो सबको समदृष्टि से देखते हैं उनके लिए कौन अपरिचित या दुश्मन है? स्वतंत्र मन, धैर्य और समदृष्टि रखने वाला व्यक्ति इस धरती पर सच्चा भगवान् है।

शास्त्रों के ज्ञान और पाण्डित्य के अलावा व्यक्ति को कोमल हृदय का विकास करना चाहिए। करुणा के बिना तपस, श्रद्धा के बिना दान, पवित्रता



के बिना आध्यात्मिक साधना, सह-अस्तित्व की भावना से रीता हृदय और प्रार्थना के बिना जीवन उसी प्रकार व्यर्थ है, जिस प्रकार रेतीले रेगिस्तान में पानी की प्रतीति। प्रेम, करुणा, दया, पवित्रता, सत्य, अहिंसा इत्यादि ईश्वर साक्षात्कार के मार्ग में सफलता के सोपान हैं। सत्संग, संतोष, निर्मोह और धैर्य इत्यादि विभिन्न सोपान हैं, जो ईश्वर के राज्य तक ले जाते हैं।

धैर्यहीन मत बनिए। दृढ़ इच्छाशक्ति और लौह संकल्प रखिए। ईश्वरेच्छा के सम्मुख चुपचाप समर्पण कीजिए। चिन्तनशील और गम्भीर बनिए। परिश्रमपूर्वक आध्यात्मिक साधना में लग जाइए। उस अनन्त सत्ता को निरंतर दयापूर्ण कृत्यों, ध्यान और अहर्निश तत्परता के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

लापरवाही और अनासक्ति के अभाव में आध्यात्मिक मार्ग से च्युत न होइए। दूसरा कदम आगे बढ़ाने के पहले देखिए और सोचिए। हमेशा भगवान पर विश्वास रखिए। हर कदम पर उसकी दया और अनुग्रह का अनुभव कीजिए।

आलस्य को अपने जीवन में स्थान मत दीजिए। भौतिक जीवन की विरोधी-धाराओं को नष्ट करने के लिए सदैव तत्पर रहिए। हर समय ईश्वर को याद रखिए। विचारों को ऊँचा उठकर ईश्वर के भव्य साम्राज्य तक जाने दीजिए। मन को सांसारिकता में खोने न दीजिए। यद्यपि भगवान को समझना आसान नहीं है, फिर भी उन पर पूर्ण विश्वास रखिए। जिसने सारी इच्छाओं को नियंत्रित कर लिया, वही सुखी है। जिसमें आत्म-संयम, साहस, दया और विनम्रता है, वही प्रसन्न रह सकता है।

भगवान के चित्र पर ध्यान करते हुए कुछ अज्ञानी लोग सोचने लगते हैं, 'इस चित्र से दर्शन किस प्रकार हो सकता है?' चित्र आपको दर्शन नहीं देता, बल्कि भगवान का वह रूप आपको दर्शन देता है। भक्त जिस रूप पर ध्यान करता है, भगवान वह रूप धारण कर अपने सच्चे भक्तों के सामने प्रकट होते हैं। अगर आप अपने भीतर भक्ति को बहुत बढ़ा लें तो वे आपको भी दर्शन देंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

जब आप मंदिर में भगवान के सामने खड़े होते हैं, उस समय आपका ध्यान दरवाजे पर छोड़े अपने जूते पर रहता है, भगवान पर नहीं। सच्ची भक्ति का विकास कीजिए। सबकुछ भूल जाइए। केवल भगवान के बारे में सोचिए।

आध्यात्मिक मामलों में विचार-विमर्श का कोई स्थान नहीं है। आप केवल अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों के लिए भगवान को पाना चाहते हैं, इसलिए जब इच्छित वस्तु हाथ नहीं लगती तो आप उनके अस्तित्व पर विश्वास नहीं करते। इसी कारण आपको उनके अस्तित्व पर संदेह होता है। उनसे सांसारिक वस्तुओं की चाह मत कीजिए। निःस्वार्थ बनिए। वे आपकी सारी आवश्यकताओं को जानते हैं और समय पर उनकी पूर्ति भी करेंगे। वे अन्तर्यामी हैं।

यदि आप अपने दृष्टिकोण, कल्पना और चिन्तन में थोड़ा भी परिवर्तन ले आयें तो आप हर जगह प्रसन्न रह सकते हैं। व्यक्ति अपनी कल्पनाओं और सोचने की पुरानी आदतों के कारण ही कष्ट पाता है। वह अपने को कभी बदलना नहीं चाहता। यह माया है।

मन में अनेक प्रकार की अशुद्धियाँ हैं, आपको कठोर तप और ध्यान के द्वारा उन्हें दूर करना होगा। धैर्यहीन मत बनिए। आपके द्वारा किये गये पाप हिमालय के सदृश हैं। जप आदि के द्वारा धीरे-धीरे उनका क्षय होता है। आप थोड़ी साधना करते हैं और थोड़े ही समय में अधिक फल की अपेक्षा रखते हैं। उत्साहपूर्वक जप करते जाइए। ध्यान के समय दो मिनट के लिए भी मन एकाग्र हो जाए तो यह वास्तव में एक महान् उपलब्धि है। वासना-क्षय होने के साथ आपकी एकाग्रता में वृद्धि होगी। अतः मानसिक अनासक्ति और विवेक के द्वारा इसे प्राप्त करने का प्रयास कीजिए।

यदि साधना के साथ अनासक्ति और वैराग्य न जुड़े हों तो इससे कोई फल प्राप्त नहीं होगा। यह मिट्टी के कच्चे पात्र में रखे जल के समान होगी। इन्द्रिय रूपी छिट्रों से शक्ति का क्षय होता रहेगा। अतः तीव्र वैराग्य का

विकास कीजिए। यदि आप लापरवाह हैं तो अपनी कमजोरियों को पहचान नहीं पायेंगे। इसलिए सदैव तत्पर रहिए। आध्यात्मिक विकास के लिए सतत् सावधानी आवश्यक है।

आपके जीवन में कष्ट आपके भले के लिए ही आते हैं। कष्टों के द्वारा आपके पाप धुल जाते हैं। जिस प्रकार शिक्षक या पिता अपने बच्चे को सजा देकर सुधारते हैं, उसी प्रकार कर्म का सिद्धान्त है कि वह आपके दुष्कृत्यों के बदले आपको सजा देकर सुधारता है। इसलिए कष्टों का स्वागत कीजिए। आपको अपने दुष्कृत्यों का मोल एक-न-एक दिन चुकाना ही होगा। जितनी जल्दी चुकायेंगे उतना ही आपके लिए अच्छा होगा। उन्हें इस भाव से ग्रहण कीजिए, अपने आपको सुधारिए और विवेकी बनिए। विफलताएँ और दुःख आपको नये पाठ पढ़ाते हैं, जिसे आप अन्य किसी प्रकार नहीं सीख पाते।

प्रयास कीजिए कि आपके पास जो वस्तुएँ हैं, उनसे आपका कोई मानसिक लगाव न रहे। किसी वस्तु पर अधिकार जमाने का विचार केवल मन में रहता है। मानसिक अनासक्ति का विकास कीजिए। इसका यह अर्थ नहीं कि आपके पास जो वस्तुएँ हैं, उन्हें आप फेंक दें। हर चीज रखिए, किन्तु किसी चीज से लगाव मत रखिए।

अपनी साधना में ढील न कीजिए। साधना ही अंततः जीवन में आपकी सहायक बनेगी। जीवन में यही आपकी एकमात्र सम्पत्ति है। अपनी साधना में नियमित रहिए और इसी जीवन में आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कीजिए। आत्मज्ञान के लिए ईश्वर की कृपा आवश्यक है। भगवान की कृपा उन्हीं पर होती है जो पुरुषार्थ करते हैं। भगवान उन्हीं की सहायता करते हैं जो स्वयं अपनी सहायता करते हैं। वास्तव में ईश्वरीय कृपा के सिद्धान्त और पुरुषार्थ के सिद्धान्त में कोई मतभेद नहीं है। साधना में सच्चाई ही सफलता की कुंजी है। गहन साधना द्वारा ही आत्म-साक्षात्कार प्राप्त किया जा सकता है। साधना केवल दिनचर्या का एक अंग नहीं होनी चाहिए। भगवान को प्रत्यक्ष देखने, समाधि में अमरत्व का अमृतपान करने और शुद्ध अद्वैत ब्रह्म की सतत् अनुभूति की सच्ची अभिलाषा होनी चाहिए। यह मार्ग उन लोगों के लिए आसान है जो निपुण हैं, जिनका संकल्प दृढ़ है और जिनके भीतर सत्य के उच्चतम शिखर पर पहुँचने की अभीप्सा है। यदि आपके प्रयासों में सच्चाई है, यदि आप अपनी कमजोरियों और त्रुटियों को स्वीकार करते हैं तो आप कभी-न-कभी जीवन के लक्ष्य तक अवश्य पहुँचेंगे।

योग से स्वास्थ्य प्राप्ति

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आप लोगों को सत्संग का पूर्णतः आनन्द उठाना चाहिए। हम केवल विद्वान् के रूप में बोलते जायें और आप लोग चुपचाप सुनते रहें, यह सत्संग का प्रयोजन नहीं होता है। सत्संग का प्रयोजन होता है, गहरी स्थिति में आना, और यही योग है। वह मनुष्य के अंतःकरण को आलोकित कर आत्मा को जगाता है। यह जो कीर्तन कर रहे हैं, इसका मतलब होता है, कुछ और गहरी स्थिति में आना। जब तक भजन को ठीक लय पर नहीं गाया जाता, तब तक आवाज सुनायी नहीं देती। उसी प्रकार अन्तःकरण को भी लय पर लाना पड़ता है और उस ताल में लाने के लिए थोड़ा-सा अलग हटना पड़ता है। अगर हमारा और आपका मन नहीं मिलेगा, तो हम जो बोलेंगे वह आपके लिए उतना प्रभावशाली नहीं हो पायेगा। मैं जोर से चिल्लाकर गाने के लिए नहीं कहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि सब कुछ भूलकर गाओ। अपने को कैसे भूलते हैं, यह हमको और सबको मालूम रहता है। कभी-कभी आप अपने को सिनेमा में भूल जाते हैं, कभी अपने को होटलों में भूल जाते हैं, कभी तो अपने को बोटल में भूल जाते हैं और कभी-कभी टोटल में भी भूल जाते हैं। भूलना तो आप जानते हो, मगर कहाँ तक भूला जाये, यह जानना जरूरी है।

थोड़ी देर पहले हम लोगों ने कुछ शब्दों का उच्चारण किया। इन शब्दों का उच्चारण इस देश में बहुत शताब्दियों से होता आ रहा है, वह है – *योगं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, सत्यं शरणं गच्छामि*। प्राचीन काल में हमारे देश में बहुत संख्या में लोग अपने शरीर, मन और आत्मा के विकास के लिए प्रयत्नशील रहा करते थे, पर कुछ समय से हमलोग इस बात को भूल गये हैं। वही बात आप लोगों को याद दिलाने के लिए हम आपके सामने बैठे हुए हैं।

कहते हैं कि दुनिया में लोग सुख, शांति और स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए तरह-तरह के तरीके अपनाते हैं, बड़े-बड़े अस्पताल बनाते हैं और अनेक प्रकार की दवाइयाँ बनती रहती हैं। सुख पाने के लिए बहुत सुविधायें उत्पन्न की गयी हैं, किन्तु मनुष्य को आज कहीं पर न तो सुख है, न शांति है। जिस आदमी के पास जाओ और पूछो, ‘तुम सुखी हो क्या? तुम्हारे जीवन में शांति है क्या? तुम स्वस्थ हो क्या?’ वह एक ही शब्द बोलेगा, ‘नहीं’। यदि उससे

पूछा जाये कि क्या तुम्हारे पास सुविधायें हैं, तो वह कहता है, 'हाँ'। सुविधा तो है, पर उससे तृप्ति क्यों नहीं होती, उससे सुख क्यों नहीं मिलता?

सुविधाओं के कई स्तर होते हैं और सुख के भी कई स्तर होते हैं। तुम सुखी क्यों नहीं हो? अस्पताल में दवाएँ हैं, बड़े-बड़े विद्वान् सर्जन और डॉक्टर हैं तो भी तुम संतुष्ट नहीं हो। तुम्हारी पत्नी है, बच्चे हैं, घर-बार है, फिर भी तुम अशांत क्यों हो? इसका मतलब यह होता है कि मनुष्य को कितनी भी सुविधाएँ मिलें, कितनी भी दवाएँ मिलें, कितना भी प्रेम मिले, उसको सुख, शांति और स्वास्थ्य की प्राप्ति नहीं हो सकती है। यह सिद्धान्त आप याद रखें। अगर मेरी इस उक्ति से आपको संतोष नहीं है, तो दुनिया की तस्वीर उठाकर देख लो। अमेरिका और यूरोप के उन देशों को देखो, जिनमें भरपूर सुविधायें हैं। उन देशों में सब कुछ है, किन्तु वहाँ के लोग कितने दुःखी हैं, जानते हो?



वहाँ के लोग कितने अशांत हैं, जानते हो? नहीं जानते। हजारों-हजार आदमी वहाँ हार्ट अटैक से मर जाते हैं। हर तीन आदमियों में से दो आदमी जीवन में कभी-न-कभी एक बार अवश्य पागलखाने का द्वार देखता है। ये आँकड़े आपने पढ़े होंगे, मैं सिर्फ दुहराता हूँ। वहाँ न नौकरी की समस्या है, न रोटी, कपड़े और मकान की समस्या है, पर एक बड़ी समस्या यह है कि सब कुछ होते हुए भी लोग बड़ी संख्या में आत्महत्या कर लेते हैं।

इसका अर्थ यह हुआ कि भोग-विलास मनुष्य के जीवन में सुख और शांति का रास्ता नहीं है। इसीलिए हमारे पूर्वज ज्ञानी, सबल और सुखी थे। उन्होंने कहा, 'अगर तुमको भोग भोगना है, तो तुमको योगशास्त्र का ज्ञान होना चाहिए, क्योंकि भोग भोगने के लिए स्वस्थ इन्द्रियों की जरूरत है। सुचारु और स्वादमय भोजन करने के लिए नीरोग शरीर की जरूरत है। अगर तुमको मधुमेह की बीमारी हो गई तो रसगुल्ला कैसे खाओगे? बासमती चावल कैसे खाओगे? शक्कर कैसे खाओगे? अगर तुम योगाभ्यास करके अपने को स्वस्थ कर लोगे, तो बासमती चावल, शक्कर और रसगुल्ला, सब खा सकते हो।

भोग को सुखपूर्वक प्राप्त करने के लिए इन्द्रियाँ जर्जर नहीं होनी चाहिए। जर्जर इन्द्रियों से भोग प्राप्त नहीं होता। तुम्हारा शरीर कमजोर है तो भोग में क्या आनन्द आयेगा? अगर तुम दिन-रात बीमार रहते हो, तो दुनिया का मजा कैसे लूटोगे? मन तो चिन्तातुर है, भयग्रस्त है, आकुल है, तब घर की भौतिक सुविधायें क्या सुख दे सकती हैं? वे आराम तो तुम्हारे लिए हराम ही साबित होते हैं। इसीलिए आज योग पर बात चल रही है। हमने इस बात को देखा और समझा है कि योग के बिना मनुष्य अधूरा है। तुम पूरी-हलवा बना लो, केवल चीनी नहीं डालो, अच्छी कढ़ी बनाओ पर नमक नहीं डालो, कैसा लगेगा? उसी प्रकार तुम अपने जीवन को चाहे कितना ही सुविधापूर्ण बना लो, कितनी भी उपाधियाँ बटोर लो, तुम्हारे पास सभी सुविधायें हों, कुबेर के समान धनी बन जाओ, और तुम्हारा यश भी चारों तरफ फैलता रहे, पर योग के बिना – ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्? कुछ नहीं। इसीलिए दुनिया में आज एक मंत्र उठा है, केवल हिन्दुस्तान में ही नहीं, ईरान, जापान, भूटान, पाकिस्तान और दुनिया का कोई कोना ऐसा नहीं है, जहाँ आज योग की ज्योति न जगमगा रही हो।

इस योग की अलख जगायी बिहार ने और बिहार में जगायी मुंगेर ने और मुंगेर ने ही जगायी सारी दुनिया में। एक भी गाँव ऐसा नहीं रहेगा, जहाँ

योग नहीं पहुँचेगा; समुद्र के अन्दर भी उसका प्रकाश फैलेगा, मछलियों का जीवन पवित्र होगा। जंगल के अंदर योग पहुँचेगा, वहाँ के पशु और एक-एक वृक्ष योग से प्रभावित होंगे। अगर तुमको अपने घर को साफ करना है, तो केवल टॉयलेट को साफ करने से घर साफ नहीं होता है। तुमको पलंग साफ करना होगा, अलमारी साफ करनी होगी, कमरा साफ करना होगा, मकड़ी के जाले साफ करने होंगे। उसी प्रकार यदि तुमको दुनिया को सुखी बनाना है, तो एक-एक चीज को योग के मंत्र से दीक्षित करना होगा। इस योग को सबको जानना है। यह न कोई जादू है, न संन्यास है, न कोई टोना और तंत्र-मंत्र है। यह बिल्कुल सरल चीज है, इसमें चार मुख्य चीजें हैं – आसन, प्राणायाम, ध्यान और योगनिद्रा। इन चार अंगों को कहते हैं योग। इन चारों को याद रख लेना। ये चार चीजें योग के प्रमुख अंग हैं और इन चारों का सम्बन्ध मनुष्य के शरीर और आत्मा से है, उसके सुख, शांति और स्वास्थ्य से है। बड़े-बड़े विकार और रोग, जो बड़े डॉक्टरों के हाथों में भी नहीं हैं, आसन और प्राणायाम के अभ्यास से भाग जाते हैं। बड़े-बड़े चिकित्सक पहले आश्चर्यचकित हो जाते थे।

एक बार की बात है, मुंगेर में सन् 1956 से हमारे बहुत-से पुराने शिष्य रहते हैं। उनमें से एक का बेटा कहीं भारतीय वायु सेना में काम करता है। उसको हृदय रोग हो गया और उसकी तरक्की रुक गयी। वह एक दिन हमारे पास बैठा हुआ था, हमने उसको कहा कि तुम 15 दिन आसन करो और उसके बाद जाकर अपना टेस्ट कराओ। पहले तो लड़का हिचका, बाद में 15-20 आसनों का अभ्यास किया, बिल्कुल सरल आसन। उस इलाज के बाद जब उसके टेस्ट में बदलाव देखा गया, तो उसके बड़े अफसर ने पूछा, 'तुम कुछ दवाई ले रहे हो क्या?' उसने कहा, 'नहीं, दवाई नहीं ले रहा हूँ।' अफसर ने कहा, 'ऐसा हो ही नहीं सकता, क्योंकि तुम्हारे अंदर तो बीमारी ही नहीं है। तुम हमको कुछ धोखा दे रहे हो?' उसके बाद उसका एक टेस्ट हुआ। टेस्ट क्या था? 100-150 सीढ़ी ऊपर चढ़ाया, फिर नीचे उतारा। तीन बार उतारा-चढ़ाया-उतारा, फिर उसकी जाँच की गयी। उसको चक्के पर घुमाया और फिर जाँच की, कोई बीमारी नहीं मिली। उन्होंने पूछा, 'क्या करते हो?' उसने कहा, 'हम योगासन करते हैं।' योगासन का दिल की बीमारी पर असर! अफसर आश्चर्यचकित हो गया। जब वह लड़का फिर आया, तब उसने मुझे सब बताया। मैंने कहा, तुम अपने अफसर से कहना कि वे जब बम्बई जायें, तो डॉ. दाते से पूछें कि आसनों का दिल की बीमारी पर क्या असर होता है।

केवल एक उदाहरण के रूप में मैंने यह बात आपको बतलायी है कि आज दुनिया की सबसे बड़ी बीमारी – दिल की बीमारी पर जब यौगिक क्रिया असर कर सकती है, तो मैं समझता हूँ कि यौगिक क्रिया सभी बीमारियों पर असर कर सकती है। सवाल केवल इतना है कि तुमको सीखना है और करना है।

आसन और व्यायाम दो अलग-अलग चीजें हैं। दोनों में समानता नहीं है। आसनों से शरीर के अन्दर जो अन्तःस्नायी ग्रंथियाँ रहती हैं, उनके द्वारा हृदय पर, फेफड़े पर, इन्सुलिन पर, शरीर के सभी अंगों पर असर होता है। यहाँ तक कि मस्तिष्क पर भी इसका असर होता है। इसलिए आसनों का विज्ञान बहुत गहरा है। उसे इस प्रवचन में समझाना संभव नहीं है। केवल



एक बात मैंने तुमको बतलायी कि आसनों के द्वारा शरीर के सूक्ष्म अंगों और सूक्ष्म क्रियाओं पर असर पड़ता है। वे सूक्ष्म क्रियायें मनुष्य के जीवन के स्तर को बदल देती हैं। सिर्फ एक आसन ले लो, शशांकासन। वज्रासन में बैठकर आगे झुकने को शशांकासन कहते हैं। अगर किसी को दमा की बीमारी है, रोज शशांकासन करो। फिर दमा नहीं आ सकता है, असंभव है। औषधियों के बिना स्वास्थ्य लाभ करोगे, इसको कहते हैं स्वास्थ्य की धारणा। आरोग्य किसे कहते हैं? दवाई खाने से कोई आदमी स्वस्थ नहीं होता। स्वस्थ व्यक्ति उसको कहते हैं, जो अपने शरीर के अन्दर के बिगड़े हुए नियमों को सुधारने में समर्थ होता है। हमारे शरीर के अन्दर कुछ नियम हैं, कुछ कानून हैं। यदि वे बिगड़ गये हैं, तो जब आप उनको सुधारेंगे तभी स्वास्थ्य लाभ कर पायेंगे।

प्राणायाम दिमाग को तेज करने के लिए बहुत अच्छा साधन है। मैं छोटे-छोटे बच्चों को जब प्राणायाम सिखलाता हूँ, तब बच्चे बहुत तेज होने लगते हैं। बच्चों को प्राणायाम सिखलाकर यंत्र द्वारा उनके दिमाग का चित्र उतारा जाता है, उन बच्चों की मनोवैज्ञानिक जाँच होती है। तब देखा जाता है कि प्राणायाम का दिमाग पर क्या असर पड़ता है। ये दो चीजें मैंने बतलायीं। इनके अलावा जो मैं आज आप लोगों को बतलाने जा रहा हूँ, वह है ध्यान और योगनिद्रा। योगनिद्रा योग की एक बहुत शक्तिशाली क्रिया है, जिसके द्वारा हम अपने रक्तचाप को संतुलित कर सकते हैं, अपने संकल्पों को बदल सकते हैं, अपनी बुरी आदतों को छोड़ सकते हैं और अपने शरीर एवं मन में जो परिवर्तन करना चाहते हैं, कर पाते हैं।

मैं समझता हूँ, दुनिया में जो आठ आश्चर्यजनक वस्तुएँ हैं, उनमें से एक आश्चर्यजनक वस्तु 'ध्यान' है। हमारे ऋषि-मुनि कैसे थे? आँखें बंद करके, इन्द्रियों को रोककर, मन की गति को थामकर और अपने मन को एक जगह पर टिकाकर, मन के अन्दर अथाह आनन्द सागर का अनुभव उनको हुआ था। उक्त रीति से यह भी संभव है कि मनुष्य अपने आपको धीरे-धीरे आध्यात्मिक दिशा की ओर उन्मुख कर ले। उन्होंने यह भी पता लगाया कि आँखों को बन्द कर, शरीर को स्थिर कर, वृत्तियों को थाम कर और मन को अन्दर लगा कर मनुष्य अन्दर से एक बहुत बड़ी शक्ति प्राप्त कर सकता है। ध्यान का मतलब हुआ, बाहर की ओर भागने वाले मन को अन्दर ले जाना, जिसके लिए हमलोगों के यहाँ अनेक उपाय बतलाये गये हैं।

— 10 जुलाई 1979, अग्रसेन भवन, गोंदिया

मन और प्राण

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

योग को जीवनशैली में शामिल करने के दो पहलू हैं। एक है कक्षा में अभ्यास, जो आपको आपके सामान्य दैनिक वातावरण में योगमय जीवन जीने के लिए केवल प्रशिक्षण, ज्ञान और कौशल प्रदान करता है। इसके बाद योग का निरंतर अभ्यास होना है जिसमें पल-पल की सजगता होती है कि आप कैसे जी रहे हैं, आप किसी परिस्थिति पर कैसी प्रतिक्रिया देते हैं – क्या यह उचित है या अनुचित, सही है या गलत, इसके क्या परिणाम होंगे, इसकी कितनी उपयोगिता है। योग का जीवन से इस प्रकार का एकीकरण निरंतर अभ्यास और क्षण-प्रतिक्षण की सजगता के साथ होना चाहिए।

प्रत्यय

मन के साथ प्राणिक आयाम के प्रति भी सजग होना चाहिए। मन से ज्यादा प्राण के प्रति सजग होना जरूरी है। चेतना और ऊर्जा में अंतर यही है कि चेतना एक द्वि-आयामी चित्र के संज्ञान की तरह है, लेकिन जब प्राण को चेतना के साथ जोड़ दिया जाता है, तो मन के संस्कार त्रि-आयामी हो जाते हैं, जीवंत हो जाते हैं। मन के इन संस्कारों को योग की भाषा में प्रत्यय कहा जाता है जिसका तात्पर्य ऐसी चीज से है जो आपके मन में जीवंत और सक्रिय हो गयी है।

मन में क्या सक्रिय हुआ है? जब आप किसी सुखद स्मृति को याद करते हैं, तो आप एक छवि देखते हैं जो उस स्मृति का एक पहलू है – ‘मैं अमुक स्थान पर घूमने गया था और वह बहुत सुंदर था। मैं समुद्र की लहरों पर सूर्योदय और सूर्यास्त देख सकता था।’ आपके पास उस स्थान की एक दृश्य-स्मृति है। यह दृश्य-स्मृति चेतना का गुण है और इस स्मृति के साथ एक भावना भी जुड़ी है – ‘वह बहुत अच्छा अनुभव था। हवा ताज़ी और साफ-सुथरी थी। पानी इतना साफ था कि मैं पानी के नीचे रेत और कंकड़ देख सकता था।’ आपको हवा और पानी की ठंडक का भी एहसास होता है, रेत पर चलने का अनुभव याद आता है। ये सभी अनुभव उस स्मृति में मौजूद हैं।

अनुभव प्राणिक स्तर से संबंध रखता है और दृश्य चेतना से। जब आप किसी चीज की कल्पना करते हैं, जब कोई दृश्य स्मृति से उभरता है, तो आप

कहते हैं कि यह मन है और आप उससे मानसिक दृष्टिकोण से निपटने की कोशिश करते हैं। शुरुआत में आप किसी तरह उस चीज को शांत कर पाते हैं जो भीतर से उभर रही है। उसका रूपांतरण या अतिक्रमण नहीं होता। उसमें वही प्राण, वही स्वरूप बना रहता है। बस इतना हुआ है कि आपने अंदर से उठी किसी चीज को स्वीकार कर लिया है, लेकिन आपने अभी तक उसका परिष्कार नहीं किया है।

जब हम किसी चीज को आहार रूप में ग्रहण करते हैं तो हम उससे पोषक तत्वों को अवशोषित कर लेते हैं और फिर अपशिष्ट पदार्थ को बाहर निकाल देते हैं। भौतिक स्तर पर आहार का यही स्वरूप होता है। यदि अपशिष्ट पदार्थ को बाहर नहीं निकाला गया तो शरीर कब्ज से ग्रस्त हो जाएगा और उससे जुड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। यही नियम मन पर भी लागू होता है। मन भी आहार ग्रहण करता है, उसे आत्मसात् करता है, और फिर उसके अपशिष्ट उत्पाद को भी बाहर निकालना होता है, लेकिन आज तक यह निष्कासन हुआ नहीं है। ग्रहण और आत्मसात् करना तो हो चुका है, इसलिए



सब कुछ मन में जमा हुआ है। इस दृष्टि से संसार का हर मन कब्ज से ग्रस्त है। जब हम मन के कब्ज से ग्रस्त होते हैं तो मन उन्हीं क्षेत्रों में घूमता रहता है।

हम जीवन की छह मूल अवस्थाओं के बीच लगातार घूमते रहते हैं – काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य। सब कुछ इन्हीं से रंगा हुआ है। यहाँ तक कि हमारा ध्यान भी मन के प्रबल गुण से प्रभावित रहता है। ध्यान इन छह साधियों के प्रभाव से मुक्त नहीं है, और जो भी सबसे प्रबल होगा, वह ध्यान में प्रकट होगा। अधिकांश लोग इसके प्रति सचेत नहीं होते, इसलिए ध्यान में कोई प्रगति नहीं होती, सिवाय इसके कि मन में जो है, उसे स्वीकार किया जाए और इस विचार से थोड़ी राहत मिले कि ‘मैंने इसे स्वीकार कर लिया है, मुझे पता है कि मन में क्या है।’

शास्त्रीय राजयोग में प्राणिक पक्ष पर अधिक जोर दिया जाता है। यहाँ कहा गया है कि मन को प्रत्ययों से मुक्त करने के लिए मन का अवलोकन करना ही पर्याप्त नहीं है। प्राणिक पक्ष को पहचानना और हटाना भी आवश्यक है। जब आप कोई फोटो खींचते हैं तो शुरुआत में उसके रंग स्पष्ट और जीवंत होते हैं। अगर आप तस्वीर को कुछ दिनों के लिए धूप में रख देते हैं तो धूप रंगों को सोख लेगी और कागज को सफेद कर देगी। कुछ समय बाद आपको केवल सफेद कागज ही दिखाई देगा, उसका रंग चला गया होगा। एक फीकी छाप जरूर दिखाई दे सकती है, लेकिन रंगों की चमक चली गई है। छवि अब जीवित नहीं, वह मृत है। राजयोग में भी यही होता है जब आप प्रत्ययों से प्राण हटा देते हैं।

प्रत्यय एक स्मृति है। यह सुखद भी हो सकती है और बुरी भी, पर उसमें कुछ तो है जो जीवंत और गतिशील है। हम उस प्रत्यय, उस स्मृति के अवलोकन के साथ काम शुरू करते हैं। बौद्धिक रूप से आप उसका अवलोकन और विश्लेषण कर सकते हैं, उसे स्वीकार भी कर सकते हैं। फिर उसके बाद क्या? उस स्मृति से प्राण को हटा दें, उसकी जीवंतता को विसर्जित होने दें, गायब होने दें। इसे मूल रंगीन छवि से एक श्वेत-श्याम छवि बनने दें, ताकि यह अंततः फीकी पड़ जाए। मैं आपको यह उदाहरण विस्तार से इसलिए समझा रहा हूँ ताकि आप मन के संबंध में प्राण की प्रासंगिकता को देख सकें। मन केवल दृश्य छवि को ही ग्रहण करता है, लेकिन जब आप किसी छवि को देखते हैं तो आपको जो अनुभव होता है, वह एक प्राणिक अनुभव है।

अगर मैं आपसे पूछूँ कि आज आप कैसा महसूस कर रहे हैं, तो आप कह सकते हैं, ‘अच्छा।’ अगर मैं आपसे पूछूँ कि आज आपके प्राण कैसा

महसूस कर रहे हैं, तो आपका जवाब क्या होगा? मैं आपको अंतर्मौन साधना का एक उदाहरण देता हूँ जिसमें आपको एक विचार का अवलोकन करने का निर्देश दिया जाता है। आप जब किसी विचार का अवलोकन करते हैं तो इस दौरान उसमें मौजूद प्राण, ऊर्जा, बल, शक्ति, संकल्प और भावना का भी अवलोकन करें। शुरु में आप केवल विचार का अवलोकन कर रहे होते हैं, लेकिन जब आप विचार के अन्य पहलुओं को, उसकी शक्ति, उद्देश्य, भावना, अनुभूति और बल को देखना शुरू करेंगे, तो आप समझने लगेंगे कि यही मुख्य घटक है जो आपके साथ रहा है, न कि दृश्य। वास्तविक स्मृति यही है, दृश्य तो केवल स्मृति को जागृत करने वाला कारक है। इसलिए, योग में प्राण के सिद्धान्त पर जोर दिया गया है, हालाँकि बहुत कम लोग जानते हैं कि इसका उपयोग और प्रयोग कैसे किया जाए। प्रायः प्राण को श्वास और इससे जुड़े अभ्यासों के स्तर पर समझा जाता है, लेकिन प्राण इससे कहीं अधिक है, यह जीवन का जीवंत अनुभव है।

तीन दृष्टिकोण

राजयोग की शास्त्रीय प्रणाली में दस यम और दस नियम होते हैं। महर्षि पतंजलि के सांख्य दर्शन से प्रेरित राजयोग में पाँच यम और पाँच नियम हैं। शास्त्रीय राजयोग में आसनों का वास्तविक वर्णन है, कुल सोलह आसनों का उल्लेख आता है। पातंजल राजयोग में केवल इतना कहा गया है कि आसन ऐसी स्थिति है जिसमें आप स्थिर और सुखी होते हैं। इसके अलावा किसी अभ्यास का कोई वर्णन नहीं है। महर्षि पतंजलि कहते हैं कि श्वास लेना, छोड़ना और रोकना प्राणायाम है, जबकि पारम्परिक राजयोग में प्राण का विषय पूरे राजयोग जितना ही विशाल है, क्योंकि यह प्राणायाम की सम्पूर्ण प्रगति को परिभाषित करता है। इसके अन्तर्गत पाँच विषय आते हैं। वे क्या हैं?

पहला है प्राण-यम – श्वास की लंबाई का नियमन और नियंत्रण; दूसरा है प्राण-आयाम – श्वास नियमन से गुजरने के बाद प्राणिक आयाम का विस्तार; तीसरा विषय है प्राणोत्थान – प्रसृत चक्रों में प्राणों का जागरण; चौथा है प्राण-प्रत्याहार – जिसमें प्राणों के प्रत्याहार का अनुभव करने के लिए कई अभ्यासों का वर्णन किया गया है; पाँचवाँ विषय है प्राण विद्या – प्राण का पूर्ण ज्ञान। फिर, प्रत्याहार के बाद, धारणा और ध्यान के स्तर आते हैं, जो विशुद्ध रूप से प्राण के बारे में हैं, मन के बारे में नहीं।



महर्षि पतंजलि की पद्धति में प्रत्याहार का तात्पर्य मन को उसके विषयों से वापस खींचने से है, जबकि शास्त्रीय पद्धति में यह प्राणों का प्रत्याहार है। यह एक बड़ा अंतर है। प्रत्याहार के बाद धारणा, फिर ध्यान और अंत में समाधि आती है। शास्त्रीय राजयोग में केवल एक समाधि होती है, न कि सांख्य पद्धति की तरह आठ चरण वाली समाधि। शास्त्रीय राजयोग में समाधि लय की अवस्था है। आप बस विलीन हो जाते हैं। आप अपने अनुभव में विलीन हो जाते हैं और आप वही बन जाते हैं। वह बन जाना संभव है। हम सब वही बन जाते हैं जो हम अपने अंदर देखते हैं। इस समय, हम सभी आत्ममुग्ध हैं और हम अपने आप में ही मग्न हैं – हमारी तस्वीरें फेसबुक पर इस शैली, फैशन, रूप, रंग और पोशाक में अपलोड होनी चाहिए – यह आत्म-मुग्धता की प्रवृत्ति है।

जरा सोचिए, अगर प्राण इस आत्ममुग्ध-प्रवृत्ति से बाहर आ जाए तो हम किस तरह के इंसान बनेंगे? योगियों ने कहा है कि आत्ममुग्ध-प्रवृत्तियाँ आत्म-केंद्रित होती हैं, और इनसे मुक्त होकर निःस्वार्थ और ईश्वर-केंद्रित बन सकते हैं। यह यात्रा भौतिक पदार्थों और इंद्रियों पर केंद्रित होने के बजाय ईश्वर और दिव्यता की ओर उन्मुख होने की है।

इससे आपको राजयोग में प्राण के महत्त्व का संकेत मिलेगा, जहाँ यात्रा वास्तव में मन से नहीं, बल्कि प्राणिक सजगता से शुरू होती है। पचपन वर्षों तक आप अपनी यात्रा मानसिक सजगता से शुरू कर रहे थे, अब आप

प्राणिक सजगता से यात्रा शुरू कर रहे हैं और राजयोग के मूल उद्देश्य की ओर वापस जा रहे हैं।

यह सब जानने के बाद, पहला दृष्टिकोण जो विकसित करना है वह है आत्म-अवलोकन का, और दूसरा दृष्टिकोण है आत्म-स्वीकृति का। तीसरा दृष्टिकोण जो विकसित करना है वह है आत्म-सुधार का। ये तीन दृष्टिकोण यौगिक और आध्यात्मिक जीवन में हमारे प्रारंभिक बिंदु बन जाते हैं। आत्म-अवलोकन, आत्म-स्वीकृति और आत्म-सुधार, यह यौगिक दृष्टिकोण की शुरुआत है क्योंकि जिस क्षण आप सजग होते हैं, आपका एक पक्ष द्रष्टा बन जाता है। आप देखना, अवलोकन करना और ध्यान देना शुरू कर देते हैं।

आत्म-अवलोकन के बाद आत्म-स्वीकृति आती है, जहाँ मैं खुद को वैसे ही स्वीकार करता हूँ जैसे मैं हूँ। अगर मुझमें यह इच्छा है, तो ठीक है, मैं इसे स्वीकार करता हूँ। अगर मुझमें यह असुरक्षा है, मुझमें यह डर है; तो ठीक है, मैं इसे स्वीकार करता हूँ। यही मैं जी रहा हूँ और अनुभव कर रहा हूँ। किसी भी चीज को नकारने की जरूरत नहीं है। अवलोकन करना, समझना, जानना एक पहलू है। यह स्वीकार करना कि यह मेरा एक हिस्सा है, मेरा स्वभाव और अभिव्यक्ति है, दूसरा पहलू है। तीसरा पहलू है आत्म-सुधार की प्रक्रिया से गुजरना ताकि मैं खुद को परिवर्तित और रूपान्तरित कर सकूँ।

यदि आप आध्यात्मिक जीवन में प्रगति करना चाहते हैं तो इन तीनों को आपका यौगिक दृष्टिकोण बनना होगा। अन्यथा, योग केवल एक एरोबिक व्यायाम बनकर रह जाता है, जिसे आप शारीरिक लचीलेपन के लिए करते हैं या योगनिद्रा के माध्यम से नींद की गोलियों के बगैर सोने के लिए करते हैं। योग अपने आध्यात्मिक उद्देश्य, संकल्प और चमक को खो देता है, और यह केवल आपके जीवन की किसी समस्या सुधारने का माध्यम बन जाता है। इसमें कोई जीवंतता नहीं है जो आपको आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करने दे। यदि आप आध्यात्मिक जीवन में वाकई प्रवेश करना चाहते हैं, तो पहली चीज जिसे आपको अपनी सजगता, दृष्टिकोण और समझ में अपनाना है, वह है अवलोकन, स्वीकृति और सुधार। किसी दोष का अवलोकन और उसे स्वीकार करने के बाद उसे सुधारना पड़ता है। कबीरदास जी कहते भी हैं –

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलया कोई।
जो दिल खोजा आपनो मुझसे बुरा ना कोई॥

यह स्वीकृति को दर्शाता है। हम सभी अपने जीवन में कुछ अच्छा चाहते हैं, लेकिन हम अपने भीतर के नकारात्मक, विक्षिप्त और विनाशकारी स्वभाव को नकारते भी जाते हैं। अगर आप किसी जंगली जानवर को जीतना चाहते हैं तो बेहतर होगा कि आप पहले उस जानवर को जानें। आप उस जानवर से छिप नहीं सकते, शायद आप यह भी नहीं जानते कि वह कौन-सा जानवर है। जिसे आप शेर समझते हैं, वह असल में एक चूहा हो सकता है, बस उससे ज्यादा कुछ नहीं। आप उसे शेर इसलिए समझते हैं क्योंकि आपने कभी पिंजरे का दरवाजा खोला ही नहीं। यह नकारने को दर्शाता है – ‘नहीं, मैं ऐसा नहीं हो सकता। मैं वह नहीं हूँ। मैं ऐसा बनना चाहता हूँ।’

एक दिन जंगल में सबेरे एक शेर जगा और उस दिन उसे अपने भीतर संतुष्टि महसूस हुई। इसलिए वह अपनी गुफा से प्रसन्न मन के साथ बाहर आया और जी भरकर दहाड़ने लगा। दहाड़े सुनकर सभी जानवर भागने लगे। शेर ने उनसे पूछा, ‘तुम खुश क्यों नहीं हो? मेरी तरफ देखो, मैं कितना मजबूत और हट्टा-कट्टा हूँ। तुम सबको मेरे जैसा होना चाहिए।’ आखिरकार उसे एक चूहा मिला। उसने चूहे को देखा, और दहाड़ते हुए कहा, ‘अरे! तुम छोटे-से जीव! मेरी तरफ देखो। आज कितना सुंदर दिन है और मैं कितना बलशाली और जीवंत महसूस कर रहा हूँ। तुम मेरे जैसे क्यों नहीं हो?’ चूहे ने जवाब दिया, ‘मैं कुछ समय से बीमार था। अगर मैं बीमार न होता तो मैं भी तुम्हारे जितना ताकतवर होता।’

हम सब ऐसे ही हैं। हम सब बीमार लोग हैं और जब हमारे जंगल के शेर यानी हमारे ऋषि-मुनि, हमें अपने जैसा बनने के लिए कहते हैं, तो हम कह देते हैं कि हम बीमार हैं, हमारी अपनी समस्याएँ और कठिनाइयाँ हैं। तब ऋषि कहते हैं – स्वयं को जानो, स्वयं को स्वीकार करो और स्वयं को बदलो। आध्यात्मिक जीवन में आपकी यात्रा के ये शुरुआती चरण हैं और इसके बाद, आप जो कुछ भी करते हैं उसका प्रयोजन और उद्देश्य होता है। एक बार जब आप आत्म-अवलोकन शुरू करते हैं तो आप अपने भीतर निराशा, तनाव, चिंता, क्रोध, घृणा और ईर्ष्या जैसी अवस्थाओं का सामना करते हैं। आत्म-अवलोकन आपको उस वर्तमान अवरोध को समझने में मदद करता है जो आपको अपनी क्षमता तक पहुँचने से रोकता है। चिंता मदद नहीं करेगी, पर स्वीकृति अवश्य मदद करेगी। जब आप अवरोध या बाधा को देखते हैं तो उसे नकारने की, स्वीकार न करने की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। उस समय

आपको मन की उस भावना का विरोध करते हुए कहना होगा, 'नहीं, मैं इसे नकार नहीं रहा हूँ, बल्कि इसे स्वीकार कर रहा हूँ।'

अगर आपके हाथ पर फोड़ा-फुँसी है तो बेशक आप उसे अस्वीकार कर देते हैं क्योंकि आप उसे नहीं चाहते। लेकिन आपको उसे स्वीकार करना ही होगा – आखिर वह है और आपको उसका प्रबंधन, उसका उपचार करना होगा। जीवन के अन्य पहलुओं को भी इसी तरह देखना होगा। जैसे आप इलाज करने और फिर से स्वस्थ होने के इरादे से फोड़े को अंततः स्वीकार करते हैं, उसी तरह आपको किसी स्थिति, बाधा या रुकावट को भी उसे दूर करने के इरादे से देखना और स्वीकार करना होगा। यही उस यात्रा की शुरुआत है जिसे पारंपरिक भाषा में विषाद कहा जाता है, जो जीवन में एक नई खोज की शुरुआत करती है।

जब आप बीमार होते हैं, तो आपकी बीमारी स्वास्थ्य की ओर एक यात्रा शुरू करती है। डॉक्टर कहते हैं, 'आप बहुत ज्यादा बैठे रहते हैं। अब आपको टहलना और जॉगिंग शुरू करनी होगी। आपकी बीमारी इसलिए है क्योंकि आप बहुत ज्यादा बैठे रहते हैं। आपको ज्यादा सक्रिय बनना चाहिए।' चूंकि डॉक्टर ने ऐसा कहा था, इसलिए आप हर दिन सुबह जल्दी उठते हैं और दो किलोमीटर पैदल चलते हैं। इस तरह वह समस्या या दुःख आपको कुछ बदलने के लिए प्रेरित करता है। इसे ही विषाद कहते हैं। युद्धभूमि में अर्जुन ने विषाद का अनुभव किया जिसके परिणामस्वरूप हमें श्रीमद्भगवद्गीता का उपहार मिला। माता पार्वती को भी विषाद हुआ, उन्होंने कहा, 'यह क्या है? संसार में इतना दर्द, इतना दुःख!' और उनके विषाद के कारण ही हमें योग मिला। भगवान शिव ने कहा, 'दुःख से निवृत्ति का यह मार्ग है।' लोग योग की शरण में तब नहीं आते जब वे स्वस्थ होते हैं, बल्कि जब वे शारीरिक और मानसिक रूप से बीमार होते हैं। वे विषाद की स्थिति में पहुँचते हैं – चाहे वह किसी संघर्ष से हो, या किसी भ्रम या किसी रोग से, और फिर एक बदलाव होता है।

प्रतिपक्ष भावना

इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो कोई भी बाधा या अवरोध हो, चाहे वह मनोवैज्ञानिक हो, अचेतन हो, या अन्य जन्मों से प्रारब्ध द्वारा लाया गया हो; उसे आप मानें या न मानें – अंततः उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। बस इतना ही मायने रखता है कि यह अभी मौजूद है और आपको इससे निपटना होगा।

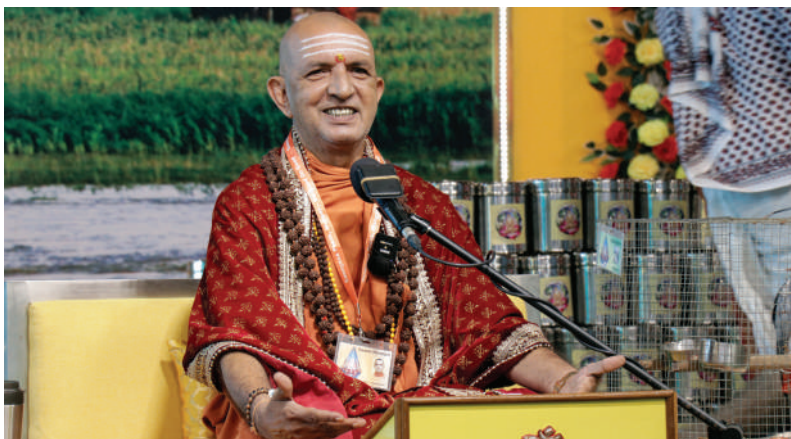
वह बदलाव होना ही है, और यह मन एवं प्राण के समायोजन से होता है। इसी कारण, स्वामी शिवानंद जी ने प्रतिपक्ष भावना के सिद्धान्त पर बहुत जोर दिया, क्योंकि यह आपको अपनी मानसिक अवधारणा और प्राणिक अनुभव को बदलने में सक्षम बनाएगा।

यह परिवर्तन यम-नियमों का पालन करने से संभव होता है। ये मात्र नैतिक या आचार संहिताएँ नहीं हैं, बल्कि ये मन की स्थितियाँ और मनोदशाएँ हैं। योग के प्रथम यम और प्रथम नियम, मनःप्रसाद और जप से परिचित कराना जरूरी है। योग वास्तव में इसी यम-नियम से शुरू होता है। मनःप्रसाद आनन्द की अवस्था है, एक प्रसन्न मनोदशा है, और जप संसार से अलग होने का एक तरीका है।

परमहंसजी कहा करते थे कि अगर कोई उनके पास आकर कहता, ‘स्वामीजी, मुझे यह समस्या है, वह समस्या है। मुझे मधुमेह है या मुझे सांस लेने में तकलीफ है। मैं क्या कर सकता हूँ?’ तो वे उससे कहते, ‘सबसे पहले यह भूल जाओ कि तुम बीमार हो। यह मानना शुरू करो कि तुम स्वस्थ हो। जितना ज्यादा तुम सोचोगे – मैं बीमार हूँ, मैं बीमार हूँ, मैं बीमार हूँ – उतना ही ज्यादा तुम बीमार होते जाओगे, क्योंकि तुम बीमारी को एक नकारात्मक भय, एक नकारात्मक विचार से पोषित कर रहे हो।’

आपका आत्म-सुझाव आपकी बीमारी की जड़ों को पोषण देकर कई गुना बढ़ा रहा है। श्री स्वामीजी का पहला नियम था कि अगर कोई इलाज के लिए आए और कहे, ‘मैं बीमार हूँ’, तो उससे कहें, ‘भूल जाओ कि तुम बीमार हो और एक स्वस्थ व्यक्ति की तरह व्यवहार करो। भोजन के लिए नीचे रसोईघर जाओ। पानी लेने के लिए ऊपर आओ। बाकी लोगों की तरह सीढ़ियों पर तीन बार ऊपर-नीचे जाओ और भूल जाओ कि तुम बीमार हो।’ यही प्रतिपक्ष भावना है जो मानसिक धारणा और शरीर की प्राणिक गतिविधि को बदल देती है।

आनंद एक ऐसी स्थिति है जिसे मन में विकसित करना होता है, और सुख एवं आनंद में स्पष्ट अंतर है। सुख को आनंद न समझें। आनंद मादक होता है और यह सबको मदहोश कर देता है, जबकि सुख केवल ‘मुझे’ मदहोश कर देता है। सुख की आदत लग जाती है, जबकि खुशी सबको अपने साथ ले जाती है। सुख अंतर्मुखता है, आनंद बहिर्मुखता है – ‘आओ, हंसो और मुस्कुराओ।’ सुख मस्तिष्क में डोपामीन रसायन का स्राव करता है; खुशी



सेरोटोनिन का स्राव करती है। यदि आप डोपामीन और सेरोटोनिन के प्रभाव को जानते हैं तो आप सुख और आनंद के बीच का अंतर जान जायेंगे। दोनों में स्पष्ट अंतर है।

योग में आनंद या खुशी वह गुण है जिसे 'मैं अस्वस्थ हूँ या मुझे यह समस्या है' जैसे नकारात्मक विचारों पर काबू पाने के लिए विकसित करना चाहिए। योग में यहीं से प्रतिपक्ष भावना की शुरुआत होती है – 'मैं खुश हूँ। मुझे इससे भी ज्यादा खुश होना है। मुझे अपने जीवन में खुशी के पल बढ़ाने हैं।' हर दिन के अंत में आकलन करें कि दिन में कितनी बार आप सचमुच खुश थे। रात को सोने से पहले खुद से पूछें, 'मैं दिन में कितनी बार खुश था? 1, 2, 3, 4, 5 बार? मैं कितनी देर खुश था? पाँच मिनट, दस मिनट? क्या मैं अगले दिन खुशी की स्थिति को ज्यादा देर तक बनाए रख सकता हूँ?' इस तरह खुशी की अवधि बढ़ाते जाएँ।

इस इंटरनेट युग के लोगों के लिए यह एक बढ़िया सीख है। पिछले साल हार्वर्ड और कैम्ब्रिज के कॉलेजों ने पहली बार खुशी पर एक महीने के सत्र चलाए। इन सत्रों में सबसे ज्यादा लोग शामिल हुए, यानी आज लोग खुश रहना भूल गए हैं। आज हमें खुशी और आनंद का सिद्धांत सीखने के लिए स्कूल जाना पड़ता है। जीवन में असंतुलन और विक्षिप्तता का पहला शिकार आनंद होता है। इसलिए यह पहला यम बन जाता है। हमें उस प्रसन्नता को थामे रखना होगा जो हमारी उंगलियों से फिसल रही है और उसे विकसित एवं मजबूत करना होगा।

मन:प्रसाद के यम के साथ पहला नियम जप है। मान लीजिए कोई व्यक्ति पहली बार योगाभ्यास के लिए आता है और तनाव, चिंता, अवसाद, हताशा जैसी समस्याओं से ग्रस्त है जो हम सभी अनुभव करते हैं। उस व्यक्ति को इंद्रिय और संसार जनित अनुभवों से अलग होने की आवश्यकता है। चौबीस घंटे चिंता और तनाव बढ़ते रहता है, इसमें कहीं-न-कहीं विराम आवश्यक है। इसलिए मंत्र दीक्षा पहली और सबसे महत्वपूर्ण दीक्षा बनती है। जब आप पाँच-दस मिनट तक मंत्र और माला के साथ जप करते हैं, तो आप अपने मन को इंद्रियों और इंद्रिय-विषयों से संबंध तोड़कर केवल मंत्र जप पर ध्यान केंद्रित करने के लिए मजबूर करते हैं। ऐसा करने पर आपको अच्छा लगता है, क्योंकि थोड़े समय के लिए आप इंद्रियों और इंद्रिय-अनुभवों से अलग हो पाते हैं।

आप मंत्र के कारण नहीं, बल्कि उस विराम के कारण खुश, शांत और संतुष्ट महसूस करते हैं। ऐसा इसलिए हुआ कि आप अपने मन को इंद्रिय-विषयों से हटाकर उस संबंध को तोड़ने में सक्षम हो गए। आप उन चार-पाँच मिनटों के लिए खुद को इंद्रियों और संसार के संवेगों से अलग कर पाए। नियमित जप से यह वियोग काल विकसित होते जाता है। एक माला जप करने में आपको दो मिनट लगेंगे, पाँच माला में आपको सात मिनट लगेंगे। पहले दिन, आप एक माला का अभ्यास करेंगे और देखेंगे कि दो मिनट तक आप कैसे विच्छेद कर पाते हैं। समय के साथ यह संख्या पाँच या दस माला हो जाती है। अवधि बढ़ती जाती है और यही विच्छेद की प्रक्रिया है।

मन:प्रसाद और जप, योग के पहले यम और नियम बन जाते हैं जो आत्म-अवलोकन, आत्म-स्वीकृति और आत्म-परिवर्तन के लिए सही परिस्थितियाँ और सही वातावरण बनाते हैं। ये दोनों आपके दैनिक जीवन का अभिन्न अंग बन जाने चाहिए।

जब हम प्राण और मन के बारे में सोचते हैं, तो हमें यह स्पष्ट होना चाहिए कि प्राण भावना और संकल्प, दोनों हैं। आज मैं प्राण की भूमिका पर जोर देना और आपका ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता था। इसके और भी कई पहलू हैं। बिहार योग विद्यालय के दूसरे अध्याय में हमारे सामने योग का एक नया आयाम, एक नया क्षितिज खुला है और यौगिक जीवनशैली इस नए अध्याय के प्रमुख तत्वों में से एक है।

— 19 दिसंबर 2019, गंगा दर्शन









शरीर, मन और भावना

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

ऐसा कहा जाता है कि परम तत्त्व का अनुभव प्राप्त करने के लिए साधक का शरीर और मन, दोनों स्वस्थ और सुदृढ़ होने चाहिए। उन सन्त-महात्माओं के बारे में आप क्या कहेंगे जो अस्वस्थ होने के बावजूद उच्च अवस्था में स्थिर हो सके।

सन्त-महात्माओं पर बीमारी का प्रभाव नहीं पड़ता। उन पर सुख-दुःख का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे इनके पार जा चुके होते हैं। अगर आपको कोई बीमारी हो जाए, वह आपको हमेशा चिंतित रखेगी। यदि आपके सिर में दर्द हो तो आप किसी और चीज के बारे में सोच भी नहीं सकेंगे। यदि आपको हल्का-सा पेट दर्द हो तो आप अपने सभी अभ्यास बन्द कर देंगे। लेकिन एक सन्त ऐसा नहीं करेगा, क्योंकि वह सुख और दुःख के पार चला गया है। इसलिए आपको अपने शरीर को तब तक व्यवस्थित रखना होगा जब तक आप स्वयं सुख-दुःख की अवस्था के पार नहीं हो जाते।

आदिगुरु शंकराचार्य को भगन्दर हो गया था, रामकृष्ण परमहंस गले के कैंसर से पीड़ित थे और स्वामी विवेकानन्द मधुमेह के रोगी थे, परन्तु इन महापुरुषों को ये रोग शरीर में अशुद्धि अथवा किसी अंग की खराबी के कारण नहीं हुए थे। सन्तों का जीवन, उनका अस्तित्व एक अलग स्तर पर होता है। वे दूसरों के कर्मों को अपने ऊपर ले सकते हैं और ये कर्म कई बार रोगों के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। लेकिन प्रकृति ऐसे महापुरुषों की रक्षा भी करती है, क्योंकि वे ईश्वरीय शक्ति के माध्यम बन गये होते हैं। रोग उनके उत्थान और विकास में व्यवधान नहीं बनते, बीमारियाँ उनकी मानसिक और आध्यात्मिक अनुभूतियों में परिवर्तन नहीं लातीं, क्योंकि यह उनके अपने कर्मों का फल नहीं है। मानवता के कष्टों और कर्मों को अपने ऊपर लेकर वे दैवी कृपा के अवतरण के माध्यम बन जाते हैं।

इसलिए अपनी तुलना सन्तों से न करें। आपको अपने शरीर और मन का समुचित ख्याल रखना है, क्योंकि यही आपको उच्च अनुभव तक ले जाने के साधन हैं।

क्या मानसिक रूप से असंतुलित व्यक्तियों को मन्त्र दीक्षा लेनी चाहिए?

मानसिक असंतुलन के बहुत कारण होते हैं। जरूरी नहीं कि यह असंतुलन मानसिक रोग ही हो। बहुत बार मानसिक रोगी करार दिये गये लोगों के अनुभव, पहुँचे हुए संत-महात्माओं के अनुभवों के समान होते हैं। अन्तर बतलाना कठिन होता है, जिसके फलस्वरूप आध्यात्मिक रूप से जागृत व्यक्ति भी गलतफहमी के कारण पागलखाने में डाला जा सकता है।

जब स्वामी सत्यानन्द जी छः वर्ष के थे, उन्हें अनेक अतीन्द्रिय अनुभव हुए। उन्होंने अपने शरीर को फर्श पर मृत पड़े हुए देखा। उनकी चेतना शरीर से विलग हो गई और वे अपने को बाहर से देख सके। चूँकि वे केवल छः वर्ष के थे, उन्होंने अपने माता-पिता को इस अनुभव के बारे में बतलाया। जब भारत में इस प्रकार का कुछ होता है, तब उसका समाधान करने के लिए एक बढ़िया प्रथा प्रचलित है। ऐसे व्यक्ति को पहले गुरु के पास ले जाया जाता है, क्योंकि गुरु ही जान सकता है कि यह अनुभव सचमुच आध्यात्मिक है या मन की विक्षिप्तता मात्र है। लेकिन कुछ देशों और समाजों में जो भी व्यवहार सामान्य से भिन्न होता है, उसे मानसिक विक्षिप्तता माना जाता है और इस कारण वहाँ बहुत-से लोग कष्ट पा रहे हैं। वहाँ के पागलखानों में बन्द बहुत-से व्यक्तियों को गलती से रख दिया गया है।

पागल अथवा पैगम्बर

एक पागल और एक संत, महात्मा या पैगम्बर के अनुभवों में काफी समानता होती है। दोनों में अन्तर केवल इतना होता है कि संत इन अनुभवों को अपने जीवन में संयोजित कर लेता है, जबकि पागल व्यक्ति ऐसा नहीं कर पाता। संत जीवन रूपी सागर को तैर कर पार कर लेता है, जबकि पागल सागर की लहरों में डूब जाता है। यदि किसी व्यक्ति को कोई विचित्र ध्वनि अथवा संगीत सुनाई देता है, या वह कहता है, 'देखो, देखो! वहाँ कोई खड़ा है' और आप देखते हैं कि वहाँ पर कोई नहीं है, तो आप कहते हैं वह सनकी है, पागल है। यदि आपके परिवार में किसी को ऐसे अनुभव होने लगें तो कुछ समय पश्चात् आप कहेंगे कि वह पागल है और उसे मानसिक चिकित्सालय भेज देंगे। आप कभी यह नहीं सोचेंगे कि शायद उसे कोई आध्यात्मिक अनुभव हो रहा है। और मानसिक चिकित्सालयों के डॉक्टर स्वयं भली-भाँति जानते हैं कि साइकोसिस से ग्रस्त रोगियों का उनके पास कोई इलाज नहीं।

साइकोसिस अथवा न्यूरोसिस

साइकोसिस क्या है? जब आप किसी ऐसी वस्तु की कल्पना करें जो वहाँ न हो, यह साइकोसिस है। न्यूरोसिस क्या है? जब आप एक ही चीज के बारे में निरन्तर सोचते जाते हैं और एक अन्तहीन चक्र में फँस जाते हैं, वह न्यूरोसिस की स्थिति है। आपके आध्यात्मिक जीवन में कई बार एक ही विचार आपको अभीभूत किये रहता है। आप इससे बाहर नहीं निकल पाते। लेकिन अगर आप यह समझ जाएँ कि आपको क्या हो रहा है और आपका कोई ऐसा मार्गदर्शक या गुरु हो जो स्वयं इस प्रकार के अनुभव से गुजरकर बाहर आया हो, तो आप ऐसे खतरों से बच सकते हैं। और अगर आप न जान पाएँ कि आपको क्या हो रहा है तो आप पागल हो सकते हैं। अपने अनुभवों को अपने व्यक्तित्व में संयोजित करने की क्षमता होनी चाहिए।

दीक्षा

दीक्षा एक ऐसी अद्भुत प्रणाली है जिसमें ऐसे अनुभवों से ग्रस्त व्यक्ति को साइकोसिस का रोगी करार देने की बजाय उसके अनुभवों को सामाजिक मान्यता प्रदान की जाती है। एक ऐसा व्यक्ति, जिसे चेतना के विभिन्न आयामों की गहरी समझ होती है, इन अनुभवों को स्वीकृति प्रदान करता है।

बहुत बार व्यक्ति को विचित्र अनुभव होते हैं, परन्तु उसका व्यवहार फिर भी सामान्य रहता है। हो सकता है उसे ध्वनियाँ सुनाई दे रही हों, वह हमेशा



चेतना की अलग अवस्था में हो, लेकिन वह आपसे बुरा व्यवहार नहीं करता। वह आपको मारता नहीं, न ही अन्य किसी तरीके से नुकसान पहुँचाता है। बहुत बार लोगों को अनुभव होते हैं और उन्हें तुरन्त पागल घोषित कर दिया जाता है, परन्तु उनका व्यवहार पागलों जैसा नहीं होता। इसी से आप जान सकते हैं कि यह आध्यात्मिक अनुभव है या पागलपन। जिस व्यक्ति को आध्यात्मिक अनुभव होता है वह निश्चित संकेत देता है, जिसे गुरु समझ लेता है।

किसी व्यक्ति को पागल करार देने से पहले किसी गुरु या आध्यात्मिक विभूति से सलाह लेना हमेशा अच्छा रहता है। अगर व्यक्ति पागलपन की ओर अग्रसर हो, तो भी दीक्षा निश्चित रूप से उसकी सहायता करेगी।

कैंसर के विषय में योग हमें क्या बतलाता है?

कैंसर किसी गहरी भावनात्मक परेशानी के कारण होता है। हम सभी कभी-न-कभी भावनात्मक रूप से व्याकुल हो जाते हैं, परन्तु यह व्याकुलता प्रायः गहरी नहीं होती। हम विचलित हो जाते हैं और फिर उस बात को भूल भी जाते हैं। लेकिन कुछ भावनात्मक परेशानियाँ ऐसी होती हैं जिन्हें हम भूल नहीं पाते और वे हमारे मन की गहराइयों में उतर जाती हैं। जिस व्यक्ति से आप प्रेम करते हैं, हो सकता है वह बीमार पड़ जाए अथवा मर जाए या कोई व्यक्ति आपको भावनात्मक चोट पहुँचाए और आप उसे भुला नहीं पाएँ। जो भावनात्मक विक्षोभ आपके अस्तित्व में घुस जाता है और जिसे आप किसी भी साधन से बाहर नहीं निकाल पाते, वह आपके भीतर अनुवांशिक त्रुटि उत्पन्न कर सकता है, आपके जीन्स तक को रूपान्तरित कर सकता है। कालान्तर में यह परेशानी केवल आपके मन को ही नहीं, बल्कि शरीर को भी प्रभावित करना शुरू कर देती है।

जो लोग कैंसर के रोगियों को योग सिखाते हैं, उन्होंने पाया है कि कैंसर से लड़ने के लिए सबसे प्रभावशाली विधियाँ ध्यान तथा मानस-दर्शन हैं। शुद्धिकरण के अभ्यासों तथा खान-पान और यौगिक जीवनशैली की भी निश्चित रूप से अहम भूमिका है, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण है ध्यान और मानस-दर्शन, जिसके द्वारा हम अपने व्यक्तित्व में घटित भावनात्मक असन्तुलन को पुनर्व्यवस्थित कर सकते हैं।

भावनाएँ बहुत शक्तिशाली होती हैं। वे आप से किसी व्यक्ति की हत्या तक करवा सकती हैं। आप भले ही बहुत योग्य और बुद्धिमान हों, अपने कार्य तथा



व्यापार में बहुत सफल हों, लेकिन यदि आपको कोई भावनात्मक परेशानी आ जाए तो आप अत्यधिक व्यथित हो जाते हैं। आपको यह परेशानी पूरी तरह से घेर लेती है। आप न सो सकते हैं, न खा सकते हैं, न ही खुशी और प्रसन्नता का अनुभव कर सकते हैं। सब कुछ खत्म हो जाता है। इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि भावनाओं को सम्भाला जाए और छोटी उम्र में ही इसका प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ताकि मन एक प्रकार की सुरक्षा-व्यवस्था का इन्तजाम कर सके। हमारी बीमारियों का कारण केवल हम पर आक्रमण करने वाले बैक्टीरिया और वायरस ही नहीं होते। एक नकारात्मक विचार भी रोग उत्पन्न कर सकता है।

कई लोगों ने मुझे बताया है कि कैंसर का निदान होने के बाद उन्होंने योग का अभ्यास शुरू किया और इसका उनके स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। यदि आप कैंसर से पीड़ित हैं तो आपको निश्चित रूप से योगाभ्यास करना चाहिए, परन्तु यदि रोग नहीं है तो भी योगाभ्यास शुरू कर दीजिए ताकि आप एक सुरक्षा-कवच का निर्माण कर सकें। योग कैंसर के उपचार में बहुत प्रभावशाली रहा है, और आने वाले समय में लोगों के पास शायद यही एक उपचारात्मक साधन होगा। वर्तमान चिकित्सकीय उपचार बेशक मदद कर सकते हैं, लेकिन सामान्यतः ये जीवन की गुणवत्ता को नष्ट कर देते हैं। जीवन में पुनः आनन्द प्राप्त करना तथा स्वाभिमान के साथ जीना कठिन हो जाता है। इसके विपरीत योग आपको स्वाभिमान के साथ जीना सिखाता है।

तंत्र शास्त्र में सूक्ष्म शरीर का सिद्धांत

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

अपनी आवश्यकताओं, इच्छाओं और क्रियाकलापों के कारण मानव का भौतिक शरीर उसकी एक सीमित अवधारणा है। लेकिन मुक्ति के तांत्रिक मार्ग पर शरीर एक सक्षम साधन बन जाता है। पशु के लिये शरीर उसका मंदिर होता है। यह व्यक्तिगत जीव और शिव तत्त्व, दोनों का आश्रय देता है। इस प्रकार यह ऐसा साधन है जिसके माध्यम से भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों जगत् का अनुभव प्राप्त किया जा सकता है। जब मूल पाशविक प्रवृत्तियों को पार कर अपनी अंतरात्मा के निकट आने के लिये प्रयास किया जाता है तब शरीर के अंदर विद्यमान महान् क्षमताओं को अवश्य खोजा जाना चाहिये। इन क्षमताओं की खोज शरीर के क्रिया विज्ञान को तांत्रिक दृष्टिकोण से समझने के साथ प्रारम्भ होती है।

शरीर के सम्बन्ध में तांत्रिक समझ और दृष्टिकोण अनुपम हैं। तंत्र शास्त्र के अनुसार पदार्थ से बने और पदार्थ पर निर्भर भौतिक शरीर में चार और शरीर विद्यमान हैं। ये सभी एक साथ मिलकर व्यक्ति को जीवन के योग्य बनाते हैं। ये 'पंच शरीर' या 'पंच कोश' के नाम से जाने जाते हैं। स्थूल से सूक्ष्म आयाम तक फैले इन पाँच अलग-अलग क्षेत्रों में ही मानव हर समय रहता



है। ये पाँच अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश तथा आनन्दमय कोश कहलाते हैं।

अन्नमय कोश

अन्नमय कोश पदार्थ से निर्मित भौतिक या स्थूल शरीर है, जिसका पोषण अन्न अर्थात् भोजन से होता है। यह भोजन भी पदार्थ से बना होता है। अन्नमय कोश अस्तित्व का सबसे स्थूल स्तर है तथा भोजन, जल एवं वायु पर निर्भरता के कारण इसे 'अन्न का आवरण' भी कहते हैं।

सृष्टि की प्रत्येक वस्तु पंच तत्त्वों के सम्मिश्रण का परिणाम है। जिस क्षण शरीर के पंच तत्त्व नष्ट हो जाते हैं, शरीर का कोई अस्तित्व नहीं बचता। इसी प्रकार सभी पेड़-पौधे, खाद्य-पदार्थ और पशु-पक्षी भी पंच तत्त्वों से बने हैं। इन पाँच तत्त्वों के संरक्षण एवं पोषण हेतु व्यक्ति भोजन ग्रहण करता है, जिसमें पशु भी आ जाते हैं, जो स्वयं पंच तत्त्वों के मिश्रण के परिणाम हैं। पंच तत्त्वों से निर्मित पदार्थ अन्य पदार्थों को जीवित रखते हैं, जो इन्हीं पाँच तत्त्वों से बने होते हैं। अन्नमय कोश का पोषण केवल वायु, अग्नि या जल द्वारा नहीं किया जा सकता है, क्योंकि क्षुधा वायु, अग्नि या पानी से शांत नहीं होती। भूख को शांत करने के लिये कुछ ऐसी चीजें प्रचुर मात्रा में ग्रहण की जानी चाहिये जो पोषण और ऊर्जा दे सकें। जो खाया जाता है उसे अन्न कहते हैं, इसलिये अन्नमय कोश भौतिक आयाम है। सम्पूर्ण भौतिक अस्तित्व को आहार के परिवर्तित रूप में देखा जा सकता है, यही कारण है कि भौतिक शरीर को अन्नमय कोश कहा गया है।

प्राणमय कोश

प्राणमय कोश व्यक्ति का ऊर्जा क्षेत्र होता है। यह सूक्ष्म शरीर है, जो ऊर्जा से बना है, इसलिये इस स्तर पर भौतिक शरीर की तुलना में अनुभव अधिक सूक्ष्म होते हैं। प्राणमय कोश भौतिक शरीर का आधार है, और साथ ही यह सूक्ष्मतर कोशों पर आधारित है। भौतिक शरीर और प्राणिक शरीर मिलकर मानव की मौलिक संरचना का निर्माण करते हैं जिसे आत्मपुरी के रूप में जाना जाता है। ये शरीर उच्चतर कोशों को अनुभव करने के पात्र हैं। प्राणमय कोश को भौतिक शरीर का प्राणिक अर्थात् सूक्ष्म प्रतिरूप कहा गया है। इसका आकार और आयाम लगभग भौतिक शरीर जैसा ही होता है। भौतिक शरीर की तरह

प्राणिक शरीर भी व्यक्ति के आकार का होता है। अतीन्द्रियदर्शी व्यक्ति प्राणमय कोश को शरीर के चारों ओर एक रंगीन, चमकीले आभामण्डल के रूप में देखते हैं, जो ग्रहण लगे चन्द्रमा के ठीक पीछे से सूर्य की निकलती रोशनी की तरह भौतिक शरीर से निकलकर सब दिशाओं में फैलता हुआ दिखता है। प्राणमय कोश अन्नमय कोश से सूक्ष्मतर होता है तथा इसके विघटन में अधिक समय लगता है।

प्राणिक शरीर के अन्दर नाड़ियों अर्थात् ऊर्जा वाहिकाओं की एक विशाल व्यवस्था होती है। इन्हीं नाड़ियों के माध्यम से प्राण शक्ति सम्पूर्ण प्राणमय कोश में प्रवाहित होती है। योग के अनुसार 72,000 नाड़ियाँ प्राणशक्ति को शरीर के प्रत्येक भाग में ले जाती हैं। नाड़ियों को सामान्यतः दो समूहों में बाँटते हैं, स्थूल और सूक्ष्म। तंत्र शास्त्र में तीन करोड़ पचास लाख नाड़ियों का उल्लेख मिलता है जो इन पाँच कोशों को समायोजित करती हैं। इन तीन करोड़ पचास लाख नाड़ियों का संबंध शरीर की स्थूल रक्त नलिकाओं, तंत्रिकाओं या नसों से नहीं है, बल्कि ये ऐसे मार्ग हैं जिनके माध्यम से प्राण और चेतना की ऊर्जा का संचार होता है। इनमें से 72,000 नाड़ियों को योग में प्रधानता दी गयी है, और इनमें से 72 को महत्त्वपूर्ण माना गया है। फिर इन 72 नाड़ियों में से क्रमशः 18, फिर 10 और अंततः 3 नाड़ियों को सबसे महत्त्वपूर्ण माना गया है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नाड़ी है ब्रह्म नाड़ी, जो सुषुम्ना मार्ग में स्थित है।

इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना तीन मुख्य नाड़ियाँ हैं। योग सिद्धांत के अनुसार पिंगला नाड़ी प्राण शक्ति का प्रवाह है। इड़ा नाड़ी चित्त शक्ति अर्थात् मानसिक ऊर्जा का प्रवाह है। सुषुम्ना इड़ा और पिंगला नाड़ियों में संतुलन का परिणाम है। जब चित्त शक्ति और प्राण शक्ति इड़ा और पिंगला नाड़ियों से समान रूप से प्रवाहित होने लगती हैं, तब सुषुम्ना नाड़ी का जागरण होता है। इस जागरण के बाद ही ब्रह्म नाड़ी की जागृति हो पाती है।

तंत्र शास्त्र के अनुसार नाड़ियों की जागृति तथा आंतरिक ऊर्जा में वृद्धि का अनुभव ब्रह्म नाड़ी के जागरण के लक्षण है। इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ियों के जागरण के बाद भी ब्रह्म नाड़ी का जागरण तब तक नहीं होता जब तक सुषुम्ना नाड़ी पर्याप्त रूप से सक्रिय तथा मजबूत न हो जाये। जब ब्रह्म नाड़ी जागृत होती है तब ऊर्जा में वृद्धि होती है और यह सम्पूर्ण शरीर में एक विद्युत धारा की तरह फैलती है। यही वह ऊर्जा है जिसे कुण्डलिनी शक्ति के रूप में जाना जाता है।

मनोमय कोश

तीसरा शरीर है मनोमय कोश, जिसका संबंध मानसिक आयाम से है। इसमें अनुभव का स्तर चेतन मन के आयाम में होता है जो अन्नमय कोश तथा प्राणमय कोश को जोड़े रखता है। इन्द्रियों और इन्द्रिय विषयों के बीच सम्पर्क मन के माध्यम से होता है। बाह्य एवं आंतरिक संसार के बीच सेतु का काम करते हुए यह बाह्य अनुभवों को सूक्ष्म शरीर तक तथा सूक्ष्म शरीर के प्रभावों को स्थूल शरीर तक पहुँचाता है।

विज्ञानमय कोश

चौथा शरीर विज्ञानमय कोश है जो अवचेतन तथा अचेतन मन से सम्बन्धित है। यह अतीन्द्रिय क्षेत्र मनोमय कोश में व्याप्त होते हुए भी उससे अधिक सूक्ष्म होता है। विज्ञानमय कोश उच्चतर विवेक, बुद्धि और समझ का प्रतिनिधित्व करता है। विज्ञानमय कोश में व्यक्ति स्थूल मन के बजाये चेतना के सूक्ष्म आयाम में कार्य करता है। यहाँ उसे उच्च ज्ञान का अनुभव होता है। अनेक विचारकों और व्याख्याकारों के अनुसार विज्ञानमय कोश बुद्धि और बौद्धिक विकास को इंगित करता है, लेकिन यह सही नहीं है। विज्ञानमय कोश ऐसी सूक्ष्म अवस्था है जहाँ बाह्य और आंतरिक संसारों का अतिक्रमण करके स्वयं



को स्थापित किया जाता है। विज्ञानमय कोश का अर्थ है इन्द्रिय विषयों के आकर्षणों के बीच रहते हुए भी दिव्यता को अनुभव करना। यह कोश व्यष्टि और समष्टि मन के बीच का सम्पर्क सूत्र है। इसी स्तर से आंतरिक ज्ञान चेतन मन तक पहुँचता है जो विवेक की ओर ले जाता है। जब यह कोश जाग्रत हो जाता है तब व्यक्ति जीवन को सूक्ष्म स्तर पर अनुभव करना तथा बाह्य दृश्यों के पीछे छिपी वास्तविकताओं को देखना प्रारम्भ कर देता है।

आनन्दमय कोश

पाँचवाँ और अंतिम शरीर आनन्दमय कोश है जो आत्मा के परमानन्द, परम सन्तोष तथा परिपूर्णता का प्रतिनिधित्व करता है। यही कारण शरीर है जो सबसे सूक्ष्म प्राणों का आवास है। यह परा अनुभूति का, परमात्मा के ज्ञान का क्षेत्र है। मनुष्य अपने सभी बाह्य एवं आंतरिक बंधनों से मुक्त होने के पश्चात् ही इस उच्चतम अवस्था को प्राप्त करता है।

इन पाँचों शरीरों को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। ये सभी नाड़ियों, प्राणों तथा चक्रों के माध्यम से एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं। तंत्र शास्त्र मानव अस्तित्व को इसी दृष्टिकोण से देखता है और मानता है कि शक्ति के जागरण, प्राणों के नियंत्रण, मन के संतुलन तथा चेतना के सुप्त क्षेत्रों के अन्वेषण से सजगता के स्तर को बढ़ाकर अंततोगत्वा परमानन्द अर्थात् आनन्दमय कोश का अनुभव किया जा सकता है।

चेतना और ऊर्जा का रूपान्तरण

सृष्टि के क्रम में जब ब्रह्माण्डीय चेतना और ऊर्जा प्रकट होना चाहते हैं तब वे रूपान्तरण की प्रक्रिया से गुजरते हैं, जिसमें तत्त्वों और चक्रों का अनुभव शामिल रहता है। सहस्रार चक्र को व्यक्तिगत शरीर में अव्यक्त के मुख्य केन्द्र के रूप में स्वीकार किया गया है। सहस्रार में शिव और शक्ति का विलय प्रतीक है अव्यक्त, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ स्थिति का।

महत् तत्त्व को अव्यक्त के विस्तार का पहला व्यक्त रूप कहा गया है, जिसे मनस्, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार के रूप में अनुभव किया जाता है। यह सूक्ष्म शरीर में आज्ञा चक्र या गुरु चक्र के रूप में प्रकट होता है। इसके पश्चात् ऊर्जा आज्ञा चक्र से विशुद्धि चक्र में रूपान्तरित होती है। यह चक्र आकाश तत्त्व के अनुभव से व्याप्त होता है। इसके आगे इस व्यक्त जगत् में ऊर्जा का

रूपांतरण एक स्पष्ट और निश्चित पथ पर होता है – विशुद्धि से अनाहत चक्र अर्थात् वायु तत्त्व, अनाहत से मणिपुर चक्र अर्थात् अग्नि तत्त्व, मणिपुर से स्वाधिष्ठान चक्र अर्थात् जल तत्त्व तथा स्वाधिष्ठान से मूलाधार चक्र अर्थात् पृथ्वी तत्त्व। मूलाधार चक्र में ऊर्जा कुण्डलिनी शक्ति के रूप में रहती है और यह सांसारिक विषयों और सुखों के प्रति आकर्षण का कारण होती है। यह प्रक्रिया अव्यक्त से व्यक्त अवस्था तक के विकास को दर्शाती है।

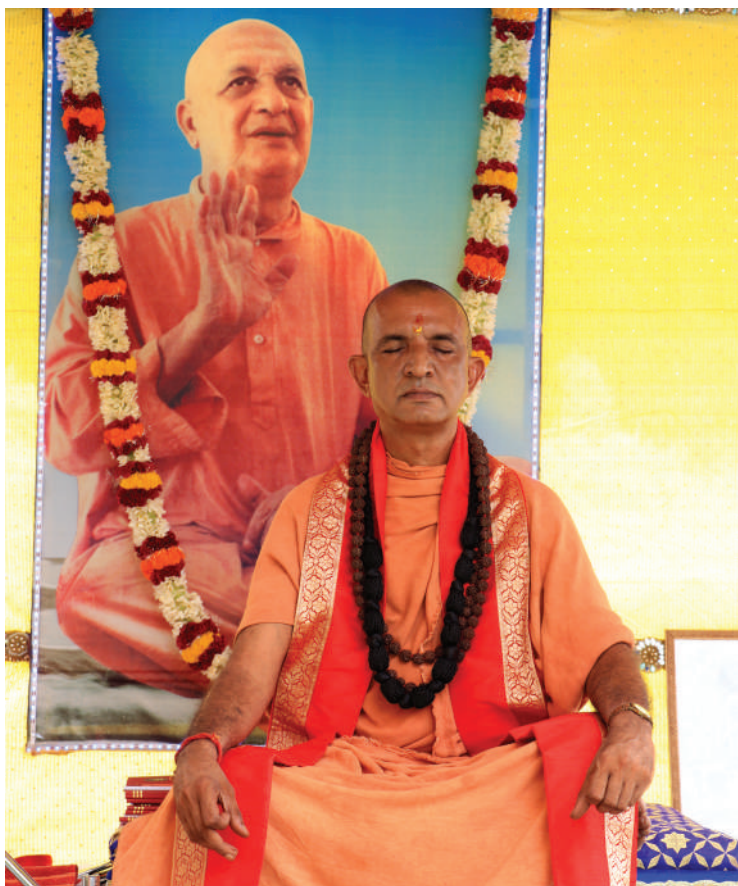
कोशों और चक्रों में सम्बन्ध

पाँचों कोश प्राण शक्ति से व्याप्त होते हैं, जिससे इनका पोषण और संचालन होता है। एक कोश से दूसरे कोश में चेतना को ले जाने की प्रक्रिया भी प्राणों की मदद से सम्पादित होती है। एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाने के लिये प्राण शक्ति का उपयोग करना पड़ता है। प्राणिक ऊर्जा का आयाम मोटरगाड़ी के गियर-बॉक्स के न्यूट्रल गियर की तरह होता है। प्राण शक्ति को सक्रिय कर लेने से व्यक्ति अन्नमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय कोशों के आयामों में जाने का मार्ग प्राप्त कर लेता है।

कोशों और चक्रों का एक निश्चित सम्बन्ध है। मूलाधार और स्वाधिष्ठान चक्र अन्नमय कोश से जुड़े हैं। मणिपुर चक्र प्राणमय कोश से, अनाहत चक्र मनोमय कोश से और विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र विज्ञानमय कोश से जुड़े होते हैं। सहस्रार आनन्दमय कोश से सम्बन्धित रहता है, जो दिव्य, परात्पर अनुभवों का क्षेत्र है।

कोशों की यात्रा

साधक का उद्देश्य एक कोश से दूसरे कोश में प्रवेश करते हुए चेतना के उच्च स्तर को प्राप्त करना होता है। सभी यौगिक एवं तांत्रिक विधियाँ इस उद्देश्य की पूर्ति में सहयोग करती हैं। कोश एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं, एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। मनोमय कोश के शुद्धिकरण के परिणामस्वरूप विचारों में स्पष्टता आती है तथा भावनाओं एवं अहंकार की अभिव्यक्ति में संतुलन आता है। विभिन्न परिस्थितियों के बारे में एक बेहतर समझ बनती है तथा बुद्धि एवं क्रिया के क्षेत्र में बेहतर रचनात्मकता आती है। जब अन्नमय कोश तथा प्राणमय कोश का शुद्धिकरण हो जाता है तब इनमें और मनोमय कोश के बीच कोई अवरोध शेष नहीं रह जाता। मन, शरीर और ऊर्जा एक



साथ काम कर पाते हैं, इससे विज्ञानमय कोश पर पड़ा पर्दा हट जाता है। तब एकाग्रता परिष्कृत हो जाती है और गहन मन सतह पर आता है। इससे मन की गहराइयों में दबे संस्कारों का निष्कासन हो पाता है, साथ ही अतीन्द्रिय अनुभव अभिव्यक्त होते हैं। विज्ञानमय कोश की शुद्धि के साथ रचनात्मकता प्रोत्साहित होती है तथा स्पष्टता स्वतः प्राप्त हो जाती है। इस अवस्था में मन वास्तव में रिक्त होते जाता है तथा आनन्दमय कोश को अनुभव करने के लिये तैयार हो जाता है।

कोशों में क्रमिक उत्थान की प्रक्रिया कुछ ऐसे असाधारण साधकों के लिये विपरीत भी हो सकती है जो दैवी कृपा के पात्र होते हैं। इस स्थिति में सीधे आनन्दमय कोश का अनुभव होता है जो अन्य सभी स्तरों पर शुद्धि ला देता है।

दिव्यता का मंदिर

तंत्र शास्त्र के अनुसार मानव शरीर अपनी उच्च प्रकृति को जानने का साधन है। यह परिकल्पना केवल भौतिक शरीर तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसमें शरीर में स्थित चक्र भी शामिल हैं। चक्रों का जागरण इस संसार को अलग तरीके से देखने के लिये प्रोत्साहित करता है। प्रत्येक चक्र के जागरण से सक्रिय चेतना के साथ-साथ निष्क्रिय चेतना का भी जागरण होता है। सक्रिय चेतना का इस्तेमाल बाह्य जगत् से जुड़ने तथा इसे समझने के लिये किया जाता है, जबकि निष्क्रिय चेतना सभी अनुभवों के द्रष्टा के रूप में अन्दर की ओर देखती है। चक्रों की जागृति के साथ चेतना के ये दो रूप एकीकृत होकर एक नई सजगता को जन्म देते हैं। पाँच कोशों तथा सात चक्रों के माध्यम से कार्य करते हुए तंत्र शास्त्र साधक को स्थूल आयाम से दिव्य आयाम तक ले जा सकता है और यह प्रक्रिया तांत्रिक साधना का एक अंग है।

तंत्र शास्त्र व्यक्ति को यह सिखाता है कि किस प्रकार शरीर तथा इसकी नैसर्गिक क्षमताओं का अन्वेषण एवं उपयोग किया जाये और चक्रों तथा उनमें विद्यमान शक्ति की जागृति एवं अनुभूति की जाये। शरीर एक मंदिर है जिसका सदुपयोग किया जाना चाहिये, दुरुपयोग नहीं। धूम्रपान करना या खान-पान में ही लिस रहना शरीर के दुरुपयोग के सामान्य उदाहरण हैं। जीवन की प्राकृतिक लय के अनुसार जीना ही शरीर के सदुपयोग का तरीका है। यदि जीवनशैली अप्राकृतिक हो जाती है तो शरीर का गलत इस्तेमाल होने लगता है। इसलिये शरीर को ऐसे मंदिर के रूप में देखा जाना चाहिए जहाँ अपनी अन्तरात्मा से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।

मानव ही एकमात्र ऐसा प्राणी है, जिसमें यह सम्बन्ध स्थापित करने की सम्भावना रहती है। इसलिये तंत्र शास्त्र शरीर को एक विशेष उपहार मानता है। इसका सही उपयोग करने के लिये व्यक्ति को जीवन में संयम एवं अनुशासन का पालन अवश्य करना चाहिये और उन चीजों से बचना चाहिये जो शरीर तथा व्यक्तित्व को नष्ट कर सकते हैं। तंत्र मार्ग में आगे बढ़ने के लिये मन और हृदय की शुद्धता आवश्यक होती है। तंत्र इस शरीर की विशिष्ट प्रकृति को परम चेतना के मंदिर के रूप में पहचानता है, जहाँ व्यक्ति स्थूल आयाम में रहते हुए भी उच्च प्रकृति को जान सकता है। इसलिये तंत्र की ओर से यह सलाह है कि शरीर, आत्मा तथा जीवन के लिये सम्मान और सजगता का विकास किया जाये।

अंतरंग साधना की ओर

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती



बहिरंग साधना की परिणति अन्तरंग साधना में तभी होती है जब साधक अपने स्वरूप का अनुभव सदैव और सर्वत्र करने लगता है। साधक को प्रतिक्षण इष्ट की अनुभूति होती रहती है। वह सर्वत्र एक विचित्र प्रकार का दिव्य अनुभव करता है। परन्तु यह सब तीव्र संवेग के साथ होता है।

ध्यान में समय-समय पर जो संस्कार-राशि प्रकट होती है, उसे तभी हटाया जा सकता है जब उपर्युक्त भाव तीव्र संवेग के साथ अखण्डाकार बन जाता है, क्योंकि कथित अवस्था में साधक की स्मृति चेतना के हर स्तर पर सुरक्षित रहती है। सारांश यह कि संस्कारों को जीतने के लिए सतत् और अखण्ड आत्मानुभूति होनी चाहिए।

ध्यान करते-करते बीच-बीच में जो दृश्य डूबते और उतरते हैं वे ही संस्कार हैं। अगर इन्हें हटाया नहीं जाएगा, तो ध्येय तत्त्व प्रकट नहीं हो सकेगा। जिस तरह बादलों से सूर्य और अन्धकार से पदार्थ छिप जाते हैं, वैसे ही संस्कारों से आत्म-चेतना। अतः संस्कारों को हटाकर आत्म-चेतना को जगाने के लिए अखण्डाकार-वृत्ति और प्रबल संकल्प की जरूरत है।

तो ध्यान करते समय चेतना का अभाव नहीं होना चाहिए। सहसा-ही तुम अन्दर की ओर सरक जाओगे। यहीं पर अखण्डाकार चैतन्य की मदद से इष्ट चेतना पुनः प्रकट होगी और आत्म-बल की अनुभूति का मार्ग खुल जाएगा। तो तुम रूप-चैतन्य से फिसले और पुनः वहीं पर आ गए। अब आत्मबल की मदद से वह रूप-चैतन्य पुनः आ जाएगा। तुम धैर्य न खोना और सोना भी मत।

तुम्हें रूप-चैतन्य की आवृत्तियाँ तब तक करनी होंगी, जब तक वह अस्थि-मांसमय देह नहीं धारण कर लेता है। क्या यह संभव है? हाँ है। रूप-चैतन्य की आवृत्तियाँ अबाध-रूप से होती रहें तो ऐसा होता है।

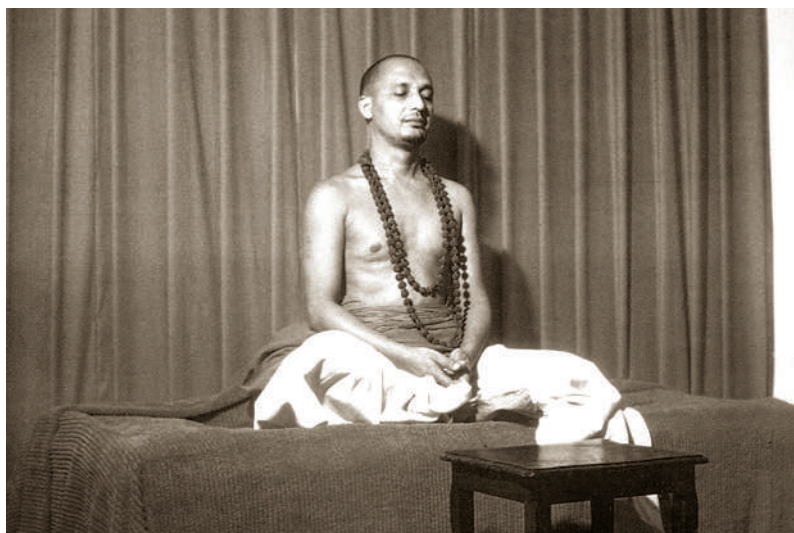
निद्रा योगी का दोष है। शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक तनावों के सूक्ष्म-देह में रहने के कारण नींद अधिक आती है। तुम्हें इस दोष को जीतने के लिये अपने अन्तःकरण को क्लेश-रहित बनाना पड़ेगा। किन्तु निद्रा पर विजय प्राप्त करनी ही होगी।

तुम्हें उपासना करनी ही होगी निर्भयता की। आत्मा निर्भय है। भय क्यों? आत्मा की हानि हो नहीं सकती, कोई उसे मार नहीं सकता। भय होता है पापी को, भय होता है आसक्ति से। अवधूत को भय कैसा?

हर कोई अक्लमन्द बनता है। अपना चेहरा किसी को नहीं दिखता। यहाँ पर क्रान्ति की जरूरत है। अपने से बाहर कोई देव हो तो हो, किन्तु मुझसे अलग नहीं। एक दिन तुम यह भी जानोगे कि जिस चेतना या आत्मा की बातें मैं अभी कर रहा हूँ, वह भी मन का विषय है। और उस आत्मा को कौन कैसे कहेगा जो मन के विषय के भी परे है!

चाहे तुम किसी पत्थर पर ध्यान करो या काल्पनिक बिन्दु पर, वास्तविक चीज तो तुम्हारे अन्दर है। जो कुछ है तुम्हारे अन्दर है और जो कुछ होता है तुम्हारे अन्दर से ही। चित्त की एकाग्रता की एक अवस्था में नींद आ ही जाती है और साधक रुक जाता है। कौन उसे जगाकर और आगे बढ़ाएगा? यहीं पर जीवित गुरु की जरूरत है। मूर्ति वास्तविक हो या काल्पनिक – महत्त्व की चीज नहीं। महत्त्व की चीज है, योग में मुकाम जानने वाला जीवित गुरु। शास्त्र भी ऐसे गुरु की पूर्ति नहीं कर सकते, क्योंकि सूक्ष्म में साधक मूर्ति के सहारे जा सकता है; कारण में संस्कारों के प्रबल हो जाने पर। किन्तु कारण से आगे उसे कौन ले जाएगा? यदि ले जाने वाला न मिला, तो वह जरूर स्थूल में लौट जाएगा। मैं कहता हूँ और तुम सुनो कि तुम्हें हर रोज आखिरी गेट तक जाकर लौटना पड़ेगा। मेरी आवाज पहचान लो। क्या सातवें आसमान में भी मेरा स्वर पहचानोगे?

थोड़ा-सा भी ध्यान साधक का कल्याण करता है। अतः अजपा न छोड़ना, अधिक न सोना, इच्छा न करना, प्रभावित न होना। द्वन्द्वों से ऊपर उठो। जिसे दूर जाना है, वह हर मील के पत्थर नहीं गिनता। महा-चेतना को उतार कर अपने पार्थिव शरीर को दिव्य बनाओ। उस महा-चेतना को साकार बना कर उससे बातें करो। उस महा-चेतना को शरीर व कर्मों में व्याप्त कर दो। ऐसा हो जाय कि वह महा-चेतना तुम्हारे पुराने व्यक्तित्व को अपने में छिपा ले। जैसे



अन्दर छिपा हुआ बुखार बाहर प्रकट होकर रोगी को पूर्णतया अभिभूत कर लेता है और अपने को रोगी के प्रत्येक हाव-भाव में प्रकट करता है, वैसे ही यह महा-चेतना अपने ही अन्दर से प्रकट होती और अपने को ही अन्य व्यक्ति के समान दिखाई देती और गार्ड करती है। यह मैंने सत्य कहा।

राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं और सामाजिक प्रतिष्ठा के नाम पर जो अध्यात्म को खोता है, उसने प्राण खोकर शरीर पाया। क्या औकात है मंत्री-पद की, यदि तुम्हें या मुझे वैराग्य की चाट लग जाए? बड़ा कौन? सम्पत्तिशाली या उसे ठुकराने वाला? सम्राट् कौन? चक्रवर्ती अधिपति या इच्छा-रहित योगी?

इच्छाओं, वासनाओं, चिन्ताओं, प्रभावों, बेचैनी और विक्षेपों के मुर्दों पर काल भैरव की तरह दहाड़कर खड़े रहो और अपनी महिमा की स्थापना करो।

हे योगी, न तू स्त्री न पुरुष; न माता न पिता; न कायस्थ न हिन्दू; न उत्तर प्रदेशी न बिहारी है।

हे योगी, तू महा-चेतना है, जो तीन लोकों के परे छिपी हुई है, एक गुफा में।

हे योगी, यह महा-चेतना न तो दूर, न पास, न स्थूल, न सूक्ष्म। यह वही है जो तू है। यह जान ले। पूर्व कथित साधनों से अपने को इस तरह पहचानो।

दीया फिर भी जल रहा है

रात के अंधेरे में एक साधु चला जा रहा था। घोड़े की टाप सुनते ही उसे लगा कि सामने से कोई घुड़सवार आ रहा है। साधु ने उस घुड़सवार को रास्ता दे दिया, किन्तु यह क्या! घुड़सवार साधु के ठीक सामने आकर खड़ा हो गया।

‘साधु, तुम मुझे नहीं जानते?’ साधु ने कहा, ‘नहीं भाई, मैं तुम्हें नहीं जानता।’ घुड़सवार बोला, ‘मैं इस क्षेत्र का प्रसिद्ध डाकू हूँ।’ साधु ने कहा, ‘ठीक है।’ डाकू ने कहा, ‘तुम्हें डर नहीं लगा।’ साधु ने कहा, ‘मैं सिर्फ भगवान से डरता हूँ।’

डाकू क्रोधित हो गया। उसने कहा, ‘साधु, देख सामने टीले पर जो घर है, उस घर को मैं पाँच बार लूट चुका हूँ।’

अबकी बार साधु मुस्कराया। उसने कहा, ‘अवश्य लूटा होगा, परन्तु उस टीले पर अब भी दीया जल रहा है और तुम अभी तक अंधेरे में भटक रहे हो।’ डाकू चुपचाप सिर झुकाये चला गया।

शान्ति का मार्ग

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

सुविधा और प्राकृतिक जीवन, दोनों में समन्वय और संतुलन होना जरूरी है। आप लोगों की मानसिकता सुविधा की ओर अधिक जा रही है। जितनी सुविधा हम लोगों को प्राप्त होती है, उतना ही हमारा शरीर, हमारी बुद्धि और भावना कमजोर होती है। जितनी सुविधा हम चाहेंगे, उतना ही बीमार रहेंगे। जितनी सम्पत्ति हम चाहेंगे, उतना ही अधिक क्लेश हमको होगा। एक आदमी को आखिर क्या चाहिए? मरने के बाद कोई सम्पत्ति साथ तो ले जाता है नहीं। पूरा जीवन आदमी मेहनत करता है, बच्चों को कहता है, 'यह सम्पत्ति हम तुम्हारे लिए कमा रहे हैं,' पर जब वह मरता है, तो बच्चे उस सम्पत्ति को जुए और शराब में उड़ा देते हैं। स्वार्थ के कारण व्यक्ति दस जीवन तक की कल्पना करता है, कामना करता है। संग्रह करता है दस जीवन के लिए और जीता है एक जीवन। इसमें बुद्धिमानी क्या है?

भारतीय परिवारों में अपनी संतानों को दुःख से इतना सुरक्षित रखने का प्रयास किया जाता है कि हर पीढ़ी में बच्चे कमजोर होते जा रहे हैं। पहली से दूसरी, दूसरी से तीसरी पीढ़ी कमजोर होती जा रही है। यह एक सभ्य समाज की पहचान तो नहीं है। आपको शायद मालूम नहीं होगा, लेकिन यूरोप में कुछ ऐसी जातियाँ थीं, जहाँ पर बच्चे को जन्म लेते ही उसी रात बाहर खुले में छोड़ देते थे, चाहे बर्फ पड़े, चाहे बरसात हो, आँधी आए, चाहे तूफान आए। और जो बच्चा जीवित रहता था, उसको फिर वापस लाते थे। कहने का मतलब कि बच्चा मजबूत होता था। आप लोगों ने महाभारत पढ़ी है। उसमें बतलाया गया है कि भीमसेन का जब जन्म हुआ था, वे एक चट्टान पर गिर गए और गिरने से चट्टान टूट गई। इसका क्या मतलब हुआ? केवल कहानी है, ऐसा तो हम नहीं मान सकते हैं, कुछ सत्य का अंश तो जरूर छिपा होगा। आपका बच्चा किसी चट्टान पर गिर जाए, तो क्या होगा? बच्चे का सर फूटेगा, चट्टान को कुछ नहीं होगा। आप ही गिर जाएँ चट्टान पर, क्या होगा? आपको चोट लगेगी, चट्टान को कुछ नहीं होगा।

हमारे गुरुजी कहते हैं कि मजबूत शरीर एक स्वस्थ और निष्कलंकित जीवन की पहचान है। मजबूत मन एक संयमित और निष्कलंकित जीवन



की पहचान है। अब आप खुद विचार कर लीजिए कि आप किस श्रेणी में आते हैं। वातानुकूलित कमरे से बाहर निकलते ही नाक जाम हो जाता है। धूप से आकर पंखे के नीचे बैठते हैं, तो छींक आने लगती है। कुछ खा लेते हैं, तो पेट गड़बड़ा जाता है। किसी प्रतिकूल परिस्थिति का सामना होता है, तो दुःख होता है, निराशा होती है। किसी से बहस हो जाए, तो जिन्दगी भर के लिए वह आदमी हमारा शत्रु हो जाता है। बाप-बेटे में अगर बहस हो जाए, तो जिन्दगी भर जो प्रेम और सहारा मिला, वह सब हम लोग भूल जाते हैं। जो त्याग अभिभावकों ने हमारे लिए किया, वह सब भूल जाते हैं। क्रोध में कहा गया एक वाक्य हमारे जीवन में पत्थर पर लिखा हुआ वाक्य हो जाता है। एक दण्ड के सामने सभी अच्छाइयाँ, सभी उपलब्धियाँ भूल जाते हैं।

विडम्बना यह है कि यही मनुष्य अंत में मोक्ष की कामना करता है। यही मनुष्य, जो इतना सब करता है, अंत में भगवान से मिलने की इच्छा रखता है। लेकिन इतनी बात तो निश्चित है कि भगवान भी कमजोर आदमी से कभी नहीं मिलते हैं, चाहे वह कितना ही जप करे, भक्ति मार्ग, ज्ञान मार्ग, हठ मार्ग में जाए। कमजोर मनुष्य इस प्रकार के कार्य करता है कि स्वयं को कष्ट होता है और विषाद की स्थिति रहती है।

एक बार नारदजी भगवान के दर्शन के लिए विष्णुलोक जा रहे थे। उन्होंने दो आदमियों को देखा, जो तपस्या कर रहे थे। वे लोग उन्हें पहचान गये कि ये तो देवर्षि नारद हैं। उन्होंने नारदजी से पूछा कि आप कहाँ जा रहे हैं? नारदजी बोले हम विष्णुजी का दर्शन करने जा रहे हैं। तो दोनों ने कहा कि हमलोग तो भगवान को पाने के लिए तपस्या कर रहे हैं, आप भगवान से पूछिये कि हमको कब उनका दर्शन होगा? नारदजी बोले, ठीक है, हम पूछ लेंगे। भगवान का दर्शन करके नारदजी फिर उन्हीं दोनों व्यक्तियों से मिलते हैं। दोनों को एक

ही उत्तर मिला था कि जिस पेड़ के नीचे वे लोग साधना कर रहे हैं, उस पेड़ में जितने पत्ते हैं, उतने जन्म लगेंगे प्रभु के दर्शन में। एक भक्त केले के पेड़ के नीचे साधना कर रहा था, जिसमें केवल पाँच पत्ते थे। नारदजी बोले कि तुमको पाँच जन्म लगेंगे। साधक बोला, 'पाँच जन्म! तब फिर इतनी मेहनत क्यों करूँ? इस जन्म में जब नहीं मिलेंगे, तब फिर मेहनत क्यों करूँ?' उसने अपना सामान उठाया और चला गया। दूसरे महाशय नीम के पेड़ के नीचे साधना कर रहे थे। हर पत्ते को गिनना संभव नहीं था, अतः नारदजी ने कहा कि इस पेड़ में जितने पत्ते हैं, उतने जन्म तुमको लगेंगे भगवान के दर्शन के लिए। जैसे ही उस व्यक्ति ने सुना, बहुत खुश हो गया, नाचने लगा, बोला कि अब तो हमको भगवान ने वचन दे दिया है, कि हमको दर्शन जरूर होंगे, चाहे कितना समय क्यों न लगे।

कहने का तात्पर्य यह है कि मानसिकता, विचार और शरीर, हर दृष्टिकोण से हम लोग बहुत ही कमजोर हैं। हम लोग स्वास्थ्य की कामना जरूर करते हैं, लेकिन स्वस्थ नहीं हैं। हम लोगों की आदतें इस प्रकार की बन गई हैं कि अपने आपको और भी कमजोर बनाते जा रहे हैं। बीमारी होती है, तो बीमारी का दूसरा कोई उपाय नहीं, तुरंत दवाई। बीमारी की अवस्था में शरीर कमजोर है और उस अवस्था में दवाई लेने से वह हमारे शरीर के जो अपने प्राकृतिक गुण हैं, उनको दबा देती है, समाप्त कर देती है। शरीर की जो रोग निरोधक क्षमता है, उसको क्षीण कर देती है। शरीर का यह हाल है।

मन का यह हाल है कि किसी व्यक्ति से मनमुटाव हो जाता है तो जिन्दगी भर के लिए दुश्मनी ठान लेते हैं। जिन्दगी भर उस व्यक्ति के प्रति आक्रोश रहता है जिसने हमको एक अपशब्द कहा है। भावना का यह हाल है कि अगर हमें भावनात्मक संतुष्टि नहीं मिलती, अगर हमारी इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं, तो हम विद्रोह करते हैं। अपने अभिभावकों से विद्रोह करते हैं, अपने समाज से विद्रोह करते हैं, अपने सिद्धान्तों से, अपने दर्शनों से विद्रोह करते हैं। इन सबके कारण जीवन में कभी स्थिरता नहीं आती, शान्ति नहीं आती, आनन्द नहीं आता और फिर इसी की खोज में दुनिया भर का चक्कर लगाते हैं।

मनुष्य शान्ति और आनन्द की कामना, उसकी खोज क्यों करता है? क्या ये कोई ऐसी वस्तुएँ हैं जो दुकान में मिल जाएँगी? क्या सुख और शान्ति को किसी दुकान से खरीद सकते हैं? क्या सुख और शान्ति को किसी साधु-संन्यासी के पास जाकर ले सकते हैं? नहीं, परिवर्तन तो भीतर से होना चाहिए।

एक बार एक दुष्ट स्वभाव का आदमी एक संत के पास गया और कहने लगा कि मुझे शान्ति चाहिए। संत ने कहा कि तुमको शान्ति की आवश्यकता नहीं है। आदमी ने कहा, 'नहीं, हमको चाहिए, आप दीजिये।' जब संत को बहुत परेशान किया तो अन्त में संत ने कहा, 'तुमको कोई भी चीज बतलाने से फायदा नहीं है, क्योंकि दस दिन के बाद तुम मरने वाले हो। तुम अपने घर जाओ।' इतना कहकर संत ने उस आदमी को भेज दिया। आदमी जब घर लौटा तो उसको चिन्ता सता रही थी – महात्माजी ने तो कह दिया है कि दस दिन में मैं मर ही जाऊँगा। जीवन से उसको अरुचि होने लगी। उसका वकील उसके पास आकर कहने लगा कि जिस व्यक्ति को आपने दस लाख का कर्ज दिया था, उसने अभी तक चुकाया नहीं है, क्या अदालत में मुकदमा करें? अब उस आदमी को दस लाख की परवाह नहीं है। कहा, 'क्या फायदा। छोड़ दो, हमारे पास तो बहुत है।' वकील को बहुत आश्चर्य हुआ कि इस आदमी के मुँह से ऐसी बात कैसे निकल गई। आदमी ने अपने भाई को घर बुलाया, जिसे कुछ साल पहले उसने यह कहकर निकाल दिया था कि अगर फिर देखूँगा तो गोली मार दूँगा। उससे उसने प्रेमभरा व्यवहार किया। इस प्रकार धीरे-धीरे उसने अपने सभी शत्रुओं, मित्रों, स्वजनों को बुलाकर प्रेमपूर्वक व्यवहार किया। जो सम्पत्ति उसके पास थी, उससे दान-पुण्य किया। नौ दिन बीत गये। पूरे समाज में उसका अच्छा नाम हो गया। जो एक दुष्ट आतंकवादी था, वह एक अच्छा आदमी हो गया।

दसवें दिन वह अपने कमरे में यह सोचकर बैठा कि आज तो मृत्यु आने वाली है, महात्माजी ने कहा था, और करने लगा मंत्र-जप। शाम हो गई, रात हो गई, जब रात बीतने पर भी मृत्यु नहीं आई, तो दूसरे दिन प्रातःकाल महात्माजी के पास पहुँचकर कहा, 'आपने तो कहा था कि दस दिन में मेरी मृत्यु हो जाएगी, परन्तु मैं अभी तक जीवित हूँ।' महात्माजी बोले, 'तुम तो कब के मर चुके हो।' आदमी बोला, 'यह आप क्या कह रहे हैं, मैं मर गया?' महात्मा ने कहा, 'हाँ, तुम तो मर चुके हो। जो व्यक्ति दस दिन पहले मेरे पास आया था, वह तो कब का मर चुका है और जो व्यक्ति मेरे पास बैठा है, वह तो दूसरा आदमी है। अब तुमको ज्ञान की आवश्यकता नहीं है, ज्ञान तुम्हें मिल गया है। स्वयं अनुभव हो गया कि अच्छे कर्म करने से क्या परिणाम होता है।'

हम आपको बतला रहे थे कि शान्ति का डिब्बा किसी बाजार में नहीं मिलता, साधु या संत के पास नहीं मिलता, शास्त्र में या भगवान के पास भी



नहीं मिलता। बस हमारे स्वभाव के कारण ही हमारा हाल मृग जैसा है। कस्तूरी है नाभि में, लेकिन उस सुगंध के उद्गम को खोजने के लिए वह पूरे जंगल का चक्कर लगाता है। हमलोग भी सुख और शान्ति के लिए पूरे संसार का चक्कर लगा रहे हैं। यह होता है स्वभाव के कारण, कमजोर जीवन के कारण। सारा जीवन अमर्यादित, अनियमित, असंतुलित रूप से जीते हैं।

किसी पत्थर पर आप भारी चीज पटक दीजिए, दरार पड़ जाएगी। फिर वह अपनी पुरानी अवस्था को प्राप्त नहीं करेगा। दरार को हटाने का एक ही उपाय है, पत्थर को बदलना। अपनी वासनाओं, महत्वाकांक्षाओं, कामनाओं की जितनी दरारें हमलोगों के जीवन में हैं, क्या वे केवल भगवान का नाम लेने से दूर हो जाएँगी? दरार जुड़ सकती है, पत्थर काम चलाऊ हो सकता है, लेकिन दागहीन नहीं हो सकता। इसके लिए अलग-अलग प्रयास करने होते हैं। इसका संकेत मनीषियों ने दिया है – एक अच्छे विचार, स्वभाव या गुण को अपने जीवन में आश्रय दो, और वह इतना प्रभावशाली होना चाहिए कि समय-समय पर उठने वाले विचारों के ज्वारभाटा को संयमित रख सके, नियंत्रित रख सके। ज्वारभाटा तो समुद्र में उठेंगे ही। समुद्री किनारा अगर ऊँचे पहाड़ों से बना हो, तो उससे टकराकर वे शांत हो जाएँगे, लेकिन अगर ऊँचे पहाड़ों के बजाय केवल रेत का किनारा हो तो उसको ज्वारभाटा खाते जाता है और फिर नगर में पानी प्रवेश करता है। इसलिए कहा गया है कि विचार-शक्ति एवं विवेक-शक्ति तीव्र होनी चाहिए, आंतरिक स्वच्छता होनी चाहिए, सत्य और असत्य का निर्णय लेने की क्षमता होनी चाहिए।

व्यक्ति को हर क्षण सजग और सचेत रहना पड़ता है। एक बार अगर फिसले, तो फिर गिरते हैं और चोट लगती है। इसीलिए हमेशा कहा जाता है

कि सम्भल कर चलो। उपनिषदों में कहा गया है कि ईश्वर प्राप्ति का मार्ग छुरे की धार की तरह है। यहीं पर साधना का, योग अभ्यास का महत्त्व मालूम पड़ता है। लेकिन साधना को केवल एक अभ्यास के रूप में नहीं, जीवन चर्चा के रूप में अपनाना चाहिए।

हर व्यक्ति जो योग से जुड़ा हुआ है, उसे एक ही निर्णय लेना है। आसन का अभ्यास स्वास्थ्य के लिए अच्छा है, करना चाहिए। प्रत्याहार का अभ्यास करना चाहिए, मन एकाग्र होता है। लेकिन इन सभी के साथ एक चीज और करनी चाहिए, जो योगमय जीवन का आधार है – यम और नियम। पातंजल योग दर्शन में पाँच मुख्य यमों की चर्चा की गयी है। यम तो होते बहुत हैं, किसी-किसी उपनिषद् में तो दस यमों की चर्चा की गयी है, बीस यमों की चर्चा की गयी है, लेकिन एक उच्च जीवन अपनाने के लिए जो प्रमुख यम और नियम हैं, उन्हें महर्षि पतंजलि ने बतलाया है। इन पाँच यमों एवं पाँच नियमों में से एक यम और एक नियम को अपना लेना चाहिए और प्रयास करना चाहिए कि इसी यम को पूर्ण रूप से लागू करें।

चाहे आश्रम में रहें, चाहे घर में रहें – एक यम और एक नियम। यम में सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य, इन पाँच में से किसी एक का चुनाव कर लेना चाहिए। अगर हम एक ऐसे व्यवसाय में हैं, जहाँ पर हमको झूठ बोलना ही पड़ता है, तो हम सत्य का आचरण नहीं कर पायेंगे। अगर हम एक ऐसे व्यवसाय में हैं, जहाँ हिंसा करनी ही पड़ती है, तो हम अहिंसा का पालन नहीं करेंगे – ठीक है, लेकिन अपरिग्रह का पालन तो कर सकते हैं। चाहे आदमी झूठ बोले, हिंसा करे, लेकिन अपरिग्रह का पालन तो करे। इसी प्रकार से पाँच नियम हैं – शौच, संतोष, स्वाध्याय, तप और ईश्वर प्रणिधान। इनमें से जो भी हो पाये, उसे अपनाना चाहिए। अगर शौच ही लेते हैं तो केवल उसी का पालन करना चाहिए। केवल अपने व्यक्तिगत जीवन में ही नहीं, बल्कि अपने वातावरण को भी उस नियम से जोड़ना चाहिए। यह नहीं कि हम शौच का पालन करते हैं, लेकिन हमारा कमरा कबाड़ी की दुकान लगता है। पेन यहाँ रखा है, एक कपड़ा वहाँ फेंका हुआ है, तौलिया यहाँ पर गिरा हुआ है, बिस्तर ऐसे ही पड़ा हुआ है, बिस्तर के नीचे कुछ कागज रखे हैं। अपने वातावरण को भी नियम के अनुकूल बनाकर चलना चाहिए। एक यम और एक नियम को अपनाकर अगर हम सिद्ध कर लें, तो वही योग में उपलब्धि है।

दान सम्बन्धी महत्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. सामान्य दान

जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. मूलधन निधि के लिए दान

बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए।
मूलधन निधि से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. सी.एस.आर. दान

जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान किसी भी निम्नलिखित लिंक पर क्लिक करके दिया जा सकता है।



SB Collect Online



HDFC Online

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट या योग रिसर्च फाउण्डेशन के नाम से हो और मुंगेर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।



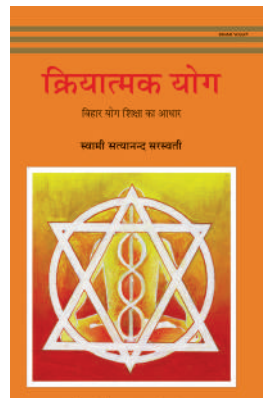
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

क्रियात्मक योग

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

पृष्ठ 174, ISBN: 978-81-85787-59-6

क्रियात्मक योग में योग की उन मूल धारणाओं और अभ्यासों पर प्रकाश डाला गया है, जो बिहार योग परम्परा की नींव हैं। बिहार योग से परिचय कराने के लिए ये आदर्श अभ्यास हैं। स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की इन आरम्भिक शिक्षाओं का उद्देश्य पाठकों को योग की समग्र जानकारी प्रदान करना है। योग तथा ध्यान के मुख्य अभ्यासों को मनो-नियन्त्रण और सजगता के विकास पर बल देते हुए विशेष रूप से समझाया गया है। योग को एक कला और विज्ञान के रूप में प्रस्तुत करने वाली यह एक कालजयी कृति है।



उपलब्ध

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें –

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 9162783904, 9835892831 या www.satyamyogaprasad.net वेबसाइट देखें।

☐ जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा



वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारीयाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा के समस्त ऑडियो, वीडियो तथा पुस्तक प्रकाशन प्रसाद रूप में satyamyogaprasad.net वेबसाइट पर उपलब्ध हैं जिन्हें इस QR code को स्कैन करके देखा जा सकता है। ये Android एवं iOS उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।



यौगिक जीवनशैली साधना

स्वस्थ जीवन हेतु रचित यह कार्यक्रम biharyoga.net तथा satyamyogaprasad.net पर उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ Android एवं iOS उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- Bihar Yoga एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- For Frontline Heroes एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2026

योगपीठ कार्यक्रम

नवम्बर 19-22	पद्म जयन्ती – योगनिद्रा संगोष्ठी
दिसम्बर 27-31	पद्म जयन्ती – यौगिक जीवनशैली महोत्सव
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	गुरु भक्ति योग

बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

सितम्बर 28-अक्टूबर 6	हठ योग एवं कर्म योग प्रशिक्षण
अक्टूबर 11-19	राज योग एवं भक्ति योग प्रशिक्षण
अक्टूबर 25-नवम्बर 2	क्रिया योग एवं तत्त्व शुद्धि प्रशिक्षण
अक्टूबर 2026-अक्टूबर 2027	संन्यास जीवनशैली अनुभव (अन्तरराष्ट्रीय साधकों के लिए)

बिहार योग भारती योगविद्या प्रशिक्षण

नवम्बर-दिसम्बर द्विमासिक यौगिक अध्ययन (अंग्रेजी)



अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए तथा योगविद्या पत्रिका को ऑनलाइन देखने के लिए बिहार योग की वेबसाइट – biharyoga.net पर जायें या बगल के QR code को स्कैन करें